भगवान ने श्रीमुख से कहा है कि " मेरे भक्तको मुझसे अधिक माने ", इसी प्रकार एक रस निबह गया ॥

(७३७) टीका। कवित्त (८४३—७३७ = १०६)

रहे गुरु भाई दोऊ, भाई साधु सेवा हिये, ऐसे सुखदाई, नई रीति लै चलाइयै। जायँ जा महोछे मै बुलाए हुलसाए अंग संग गाडी सामा सो भंडारी दै मिलाइयै ॥ याको तातपर्य्य सत घटती न सही जात, बात वे न जानै, सुख-मानै मन भाइयै । बड़े गुरु सिद्ध जग महिमा प्रसिद्ध, बोले बिनै कर जोरि सोई कहिकै सुनाइयै ॥ ५८० ॥ (६२९—५८० = ४९)

वार्तिक तिलक।

दोनों गुरु बन्धुओं के हृदय में संत सेवाकी बड़ी प्रीति थी; सज्जन ऐसे सुखदाता थे कि दोनोंने मिलके एक नवीन उत्तम रीति चलाई। जहां संत सेवा महोत्सव में बुलाये जाते, वहां अति आनन्द पूर्वक घरसे घृत आटा आदिक सामग्री गाड़ीमें भर ले जाके चुपचाप भंडारी कोठारी को दे, उनकी सामग्री में मिलवा देते थे। इसका तात्पर्य्य यह कि जिसमें कहीं सामग्री घटने से सज्जनों की निन्दा न हो। इस बात को उत्सव-करनेवाले नहीं जानते थे। जब सामग्री पूर्ण हो जाय तब सुख मानते थे।

दोनों गुरुभाइयों के श्रीगुरु स्वामी जगत में प्रसिद्ध महिमायुक्त सिद्ध थे; उनसे दोनों हाथ जोड़ आप दोनोंने विनय सुनाये, कि—

(७३८) टीका। कवित्त (८४३–७३८ = १०५)

चाहत महोछौ कियौ हुलसत हियौ नित, लियौ सुनि बोले " करौ वेगि दै तियारियै "। चहूंदिशि डाऱ्यौ नीर, कऱ्यौ न्यौतौ ऐसे धीर, आवैं बहु भीर संत, ठौरानि संवारियै॥ आए हरिप्यारे चारौ खूंटतें निहार नैन, जाय पगुधारे सीस बिनैले. उचारियै। भोजन कराय दिनपांच लगि छाय रहे पट पहिराय सुख दियौ अति भारियै॥ ५८१॥ (६२९–५८१ = ४८)

" तियारियै " = تیاری तैयारी = बनाव, जुटाव।

वार्त्तिक तिलक।

" हे नाथ! संत महोत्सव करने के लिये हृदय में नित्य हुलास होता है "। सुनकर स्वामी जी ने कहा कि " अच्छा है, शीघ्र जुटाव बनाव करो। संतोंका नेवता हम यहांही से कियेदेते हैं "।

ऐसा कह जल लेकर चारों दिशाओं में डालदिया। ऐसे धीर समर्थ थे कि सब संतोंके यहां नेवता पहुंचगया। आपने आज्ञा दी कि " संतोंकी बड़ी भीड़ आवेगी रहनेके लिये छाया ठौर बनाओ "। ऐसाही किया। चारो खूंटसे हरि प्यारे संत आ विराजे; दोनों भाइयों ने नेत्रोंसे दरसन प्रणाम कर, श्रीगुरु चरणों में शीस नवाके विनय सुनाया कि " महाराज! संत तो बहुत आए, सामग्री इतनी कहां है? " श्रीगुरु ने आज्ञा की कि " जितना मनमाने उतना दो, घटेगा नहीं, देनेहारे प्रभु समर्थ हैं "। आज्ञा सुन, सुखी हो, भोजन

कराके, पांच दिन तक सत्कार किये, फिर संतों को वस्त्रादिक पहिनाके बड़ा भारी सुख दिया।

(७३९) टीका। कवित्त (८४३-७३९ = १०४)

आज्ञा गुरु दई "भोर आवौ फिरि आसपास, महा सुख-रासि 'नामदेव जू' निहारियै। उज्वल वसन तन एक ले प्रसन्न मन, चले जात बेगि सीस पायनिपै धारियै॥ वेई दें बताय 'श्रीकबीर' अति धीर साधु, चेले दोऊ भाई परदक्षिना विचारियै। प्रथम निरखि "नाम" हरखि लपटि पग लगि रहे छोड़त न बोले सुनो धारियै॥ ५८२॥ (६२९-५८२ = ४७)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगुरुदेव जी ने दोनों शिष्यों को आज्ञा दी कि "बड़े प्रभात इस संतशालाकी प्रदक्षिणा करना; उज्वल वस्त्र धारण किये अकेले प्रसन्न मन चले जाते हुए महासुखराशि श्रीनामदेव जी का दरशन तुमको होगा, शीघ्रही चरणों में सीस रख प्रणाम करना, फिर श्रीनामदेव जी ही परम धीर साधु श्रीकबीर जी का दरसन करादेंगे"।

आज्ञासुन दोनों भाई परिक्रमा को चले। पहिले श्री नामदेव जी का दरसन पा हर्षित हो चरणों में लिपट गये, छोड़ते न थे, तब श्रीनामदेव जी ने कहा कि "अब चरण छोड़के हमारा वचन सुनो"।

(७४०) टीका। कवित्त (८४३-७४० = १०३)

साधु "अपराध जहाँ होत तहां आवत न, होय सनमान

सब संत तौहीं आइयै। देखि प्रीति रीति हम निपट प्रसन्न भए," लये उर लाय "जावौ श्री कबीर पाइयै" ॥ आगें जो निहारैं भक्तराज दृग धारैं चली बोले हँसि आप "कोऊ मिल्यौ सुखदाइयै?"। कह्यौ "हां जू," मान दई भई कृपा पूरन यों, सेवाको प्रताप कहौ कहां लगि गाइयै ॥ ५८३ ॥ (६२९–५८३ = ४६)

वार्तिक तिलक।

"सुनो, जहां साधुवों का अपराध होता है वहां हम नहीं आते, और जहां सब संतों का सनमान होता है तहां ही हम आते हैं; तुम्हारी प्रीत रीति देख हम प्रसन्न हुये," ऐसा कह दोनों को हृदय में लगा आज्ञा दी कि "जाओ आगे श्रीकबीर जी को पाओगे।"

दोनों भक्त चलके देखैं तो भक्तराज श्रीकबीर जी चले जाते हैं, चरणों में पड़ गये, नेत्रों से जल की धारा चलने लगी। श्रीकबीर जी ने हँसके पूछा कि "कोई और सुखदाई संत अर्थात् नामदेवजी तुमको मिले हैं?" भक्तों ने उत्तर दिया कि "हां महाराज मिले"। उसी प्रकार श्री कबीर जी ने भी दोनों को कृपा से मान दिया।

इस प्रकार श्रीगुरु और संतों की पूर्ण कृपा पा, भगवत् प्राप्ति के अधिकारी हुये।

कहिये, संत सेवा का प्रताप कैसे कोई कह सक्ता है? ॥

दो०—"जिनि जिनि भक्तनि प्रीति की, ताके बस भए आनि।
सैन होइ नृप टहल किय, नामा (नामदेव) छाई छानि ॥१॥

"जगत विदित पीपा, धना, अरु रैदास, कबीर।
महा धीर, दृढ़ एक रस, भरे भक्ति गम्भीर ॥ २ ॥"

(७४१) मूल। छप्पै (८४३–७४१ = १०२)

कील्ह कृपा कीरति बिशद, परम पारषद सिष प्रगट ॥ आसकरन[1] रिषिराज, रूप[2], भगवान[3], भक्तगुर। चतुरदास[4] जग अभै छाप, छीतर[5] जु चतुर बर ॥ लाखै[6] अद्भुत, रायमल[7] खेम मनसा क्रम वाचा। रसिक रायमल, गौर देवा[8] दामोदर[9] हरिरँग राचा ॥ सबै सुमंगल दास दृढ़ धर्म धुरंधर भजन भट। कील्ह कृपा कीरति बिसद परम पारषद सिष प्रगट ॥ १५८ ॥ (२१४–१५८ = ५६)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगुरु कील्हदेव जी की कृपासे सब शिष्य श्रीसीताराम जी के परम पारषद उज्ज्वल कीर्तिवाले प्रगट हुये।

(१) श्रीआसकरन जी राजर्षि।

(२।३) श्रीरूपदासजी, श्रीभगवानदासजी परम गुरु भक्त।

(३) श्रीचतुरदास जी ने जगत में अभै छाप पाया।

(४।५) श्रीछीतर जी अतिशय चतुर; श्रीलाखै जी बड़े अद्भुत।

(६) श्रीरायमल जी मन वचन कर्म से क्षेम (मंगल) युक्त।

(७।८।९।१०) श्रीरसिकरायमल जी, श्रीगौरदास जी, श्रीदेवादास जी, श्रीदामोदर जी, श्रीहरि के प्रेम रंग में रंग गये।

ये सब परम मंगलरूप श्रीरामवात्सल्य में दृढ़, धर्म धुरंधर, श्रीसीताराम भजन के सुभट हुये ॥

(२३२) श्रीनाथभट्ट जी ।

(७४२) मूल । छप्पै ८४३-७४२=१०१)

रसरास उपासक भक्तराज, "नाथभट्ट" निर्मल वयन ॥ आगम निगम पुरान सार शास्त्रनि जु विचारयौ । ज्यौं पारो दै पुटहिं सबनि कौ सार उधारयौ ॥ श्रीरूप सनातन जीव भट्ट नारायन भाख्यौ । सो सर्बस उर सांचि जतन करि नीके राख्यौ ॥ फनी वंश गोपाल सुवरागा अनुगा कौ अयन । रसरास उपासक भक्तराज नाथभट्ट निर्मल वयन ॥ १५९ ॥ (२१४-१५९=५५)

वार्त्तिक तिलक ।

रास (शृंगार) रसके उपासक भक्तराज श्रीनाथभट्ट जी निर्मल वचन बोलने वाले थे । आगम और निगम पुराण सत शास्त्रों को विचार के सबों का सारांश निकाल के जैसे पारा में औषधियों का पुट देकर सिद्ध रसायन बना लेते हैं ऐसे ही आपने रसायन कर लिया । जो श्री रूप सनातन जी ने तथा श्रीनारायणभट्ट जी ने प्रेम भक्ति प्रतिपादन कथन किया था, सो सर्वस्व भले प्रकार यत्न से अपने हृदय में संचित कर रक्खा । फणी वंश में उत्पन्न

ऊंचेगांव वाले के पुत्र गोपालदास जी के पुत्र नाथभट्ट जी रागानुगा भक्ति के स्थान ही हुये ॥

शृङ्गार रस को "रसराशि" इस लिये कहा कि इसमें पांचो रसों की राशि होती है अर्थात् इस रस के उपासक में सब रसों की बातें इकट्ठी ही पाई जाती हैं ॥

(२३३) श्रीकरमैती जी।

(७४३) मूल। छप्पै (८४३-७४३=१००)

कठिन काल कलिजुग में, "करमैती" निहकलंक रही ॥ नस्वर पति रति त्यागि, कृष्ण पद सों रति जोरी । सबै जगत की फांसि तरकि तिनुका ज्यों तोरी ॥ निर्मल कुल कांथड्या धन्नि परसा जिहिं जाई । बिदित वृन्दाबन वास संत मुख करत बड़ाई ॥ संसार स्वाद सुख वांत करि, फेर नहीं तिन तन चही। कठिन काल कलिजुग में करमैती निहकलंक रही ॥ १६० ॥ (२१४-१६०=५४)

वार्त्तिक तिलक।

कलियुग ऐसे कठिन काल में जन्म लेकर श्रीकरमैती जी कलियुग के अघों से बचीं और निष्कलंक ही रहीं। संसारी मिथ्या पति की रति को त्यागकर, श्रीकृष्ण चरणों में दृढ़ रति की। "बसी श्याम मूरति हियें, बाढ़्यो प्रेम

अपार ।" जगत के सब संबंधियों की प्रीति रूपी फांसी तर्ककर, तृण समान तोड़ डाली । निर्मल "कांथड़या" कुल धन्य है और पिता "परसुराम जी" धन्य हैं कि जिनके ऐसी हरिभक्त पुत्री उत्पन्न हुई । विख्यात वृन्दावनवास किया, जिसकी बड़ाई सब संत अपने मुख से करते थे, संसार स्वाद विषय सुख को वमन करके, फिर उन सुखों की ओर देखा भी नहीं ॥

(७४४) टीका । कवित्त (८४३–७४४ = ९९)

शेषावति नृप के पुरोहित की बेटी जानौ, वास हौ खंडेला करमैती जो बखानियै । बस्यौ उर श्याम, अभिराम कोटि काम हूं ते, भूले धाम काम सेवा मानसी पिछानियै ॥ बीत जात जाम तन वाम अनुकूल भयौ, फूलि फूलि अंग गति मति छवि सानियै । आयौ पति गौनौ लैन, भायौ पितु मातु हियै, लियै चित चाव पट आभरन आनियै ॥ ५८४ ॥ (६२९–५८४ = ४५)

वार्तिक तिलक ।

शेषावति नगर के राजा के पुरोहित खंडेला के रहने वाले श्रीपरसुराम जी की कन्या श्रीकरमैती जी को जानिये ।

कोटानि काम से अधिक अभिराम श्याम सुन्दर ने आपके हृदय में निवास किया; इससे गृह के कामों को भूल, केवल मानसी पूजा करने लगीं । सेवा करते करते पहर के पहर बीत जाते थे; यद्यपि देह तो कुटिल स्त्री

ज्ञातिका था, तथापि प्रभु कृपा से अति अनुकूल होगया। अंभ अंग से प्रफुल्लित हो आपने अपनी मति की गति को श्रीकृष्ण छबि में मिला दिया।

जिस समय पति गवनालेने आया उस समय माता पिता को बहुत प्रसन्नता हुई; बड़े आनन्द से वस्त्र भूषण आदि सब साज प्रस्तुत किये॥

(७४९) टीका। कवित्त (८४३-७४९=९८)

पऱ्यो सोच भारी कहा कीजियै बिचारी, "हाड़ चाम सों सँवारी देह रति के न काम की। तातें देवौ त्यागि मन! सोवै जानि, जाग अरे, मिटै उर दाग एक सांची प्रीति स्याम की॥ लाज कौन काज? जौपै चाहै ब्रजराज सुत, बड़ोई अकाज, जौपै करै सुधि धाम की। जानी भोर गौनौ होत, सानी अनुराग रंग, संग एक वही, चली भीजी मति वाम की॥ ५८५॥ (६२९-५८५=४४)

"दाग" = داغ = चिन्ह, कलंकित चिन्ह।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकरमैती जी को बड़ा भारी सोच पड़ा विचार करने लगीं कि "अब क्या करूं? इस पुरुष की देह हाड़ मांस चाम से बनाई, प्रीति करने के योग्य नहीं; इससे इसे त्याग देना चाहिये। हे मन! तू सोवै मत, मोह नींद से जाग के सच्ची प्रीति एक श्रीश्याम की कर, जिससे हृदय की मलीनता मिटजाय; जो श्रीवृजराजनन्दसुत को चाहै तो लाज मत कर; जो घर की सुधि करेगा तो बड़ा ही अकाज होगा।"

मन को ऐसे समझाकर जिस दिन के प्रभात में गौना होना था उसी रात्रि में अनुराग रंग से पगी, मति को प्रेम में भिगाकर, अकेले एक प्रभु ही का ध्यान साथ ले, आप चल दीं ॥

(७४६) टीका । कवित्त (८४२–७४६ = ९७)

आधी निसि निकसी यों बसी हिये मूरति सो, पूरति सनेह तन सुधि विसराई है । भोर भये सोर पर्‌यौ, पर्‌यौ पितु मातु सोच, कर्‌यौ लै जतन ठौर ठौर ढूंढ़ि आई है ॥ चारों ओर दौर नर, आये ढिग दुरि जानि, ऊंट के करंक मध्य देह जा दुराई है । जग दुरगंध कोऊ ऐसी बुरी लागी, जामें वह दुरगंध सो सुगंध सी सुहाई है ॥ ५८० ॥ (६२९–५८६ = ४३)

वार्तिक तिलक ।

आधी रात को निकलकर चल दीं । वही साँवली मूरति हृदय में बसी, स्नेह को पूर्ण करती और उसीने शरीर की सुधि भुला दी । प्रभात होने पर बड़ा कुलाहल पड़ा; माता पिता अत्यन्त सोचकर यत्न से ठौर २ ढूंढ़ आये, और बहुत से लोगों को चारों ओर ढूंढ़नेको दौड़ाए ।

श्रीकरमैती जी ने जाना कि ढूंढ़नेवाले लोग समीप आगये, तब, एक मरे ऊंट के करंक को सिआरों ने खोल डाला था उसी में घसकर छिप गई । देखिये, आपको जगत् के पापों की दुर्गंधि इतनी दुःसह लगी कि आपने उसके सामने उस करंक की दुर्गंधि को सुगंध के सम मान लिया ॥

(७४७) टीका। कवित्त (८४३-७४७=९६)

बीते दिन तीन वा करंक ही मै संक नहीं, वंक प्रीति रीति यह कैसें करि गाइयै । आयौ कोउ संग, ताही संग गंग तीर आई, तहां सो अन्हाई दै भूषन वन आइये ॥ ढूढ़त परसराम पिता मधुपुरी आये, पते लै बताये जाय मथुरा मिलाइये । सघन विपिन ब्रह्मकुंड पर, बर एक,चढि करि, देखी, भूमि अँसवा भिंजाइये ॥ ५८७ ॥ (६२९-५८७=४२)

वार्तिक तिलक

उसी खाकर (करंक) ही में बैठे तीन दिन बीत गये मनमें कुछ भी शंका नहीं । यह बांकी प्रीति की रीति किस प्रकार गान हो सकती है ?

चौथे दिन कोई श्रीगंगा को जाताथा उसी के साथ आकर गंगा में स्नानकर, अपने सब भूषण दान दे, वृन्दावनमें चली आईं । हरि स्मरण में मग्न रहती थीं ।

पीछे, आपके पिता परशुराम जी ढूंढ़ते २ मथुराजी में आये; और मथुरिओं से पता पाकर उनको साथ में ले सघन वन ब्रह्मकुंड के समीप एक वट के वृक्षपर चढ़, श्री करमैती जी को देख उनने आंसुओं से भूमिको भिगा दिया ॥

(७४८) टीका । कवित्त (८४३-७४८=९५)

उतरि कै आयरोय पाय लपटाय गयौ, " कटी मेरी नाक जग मुख न दिखाइयै । चलौ गृह वास करौ लोक उपहास मिटै, सासु घर जावौ मत, सेवा चितलाइयै ॥ कोऊ

सिंह व्याघ्र अजू वपुकों विनास करै, त्रास मेरै होत, फिरि मृतक जिवाइये" । बोली कही "सांच बिन भक्ति तन ऐसो जानौ जौपै जियो चाहौ, करौ प्रीति, जस गाइये" ॥ ५८८ ॥ (६२९–५८८=४१)

वार्तिक तिलक ।

परशुराम वृक्ष से उतरके रोते हुये । श्रीकरमैती जी के पास पहुँच चरणों में लपटकर कहने लगे कि "बेटी ! तुम्हारे चले आनेसे संसार में मेरी नाक कटगई; मैं लज्जा से किसी को मुख नहीं दिखाता । तुम चलो अपने घर में निवास करो, लोक की उपहांस मिटे, ससुराल मत जाओ, घर ही में चित्त लगा के भजन पूजा करो, यहां बनमें कोई सिंह व्याघ्र खाजाय, तो मुझे बड़ा दुःख होगा, तुम्हारी माता और मैं मृतक प्राय हूं, सो फिर चलकर दोनों को जिलाओ ।"

आपने उत्तर दिया कि "सत्य कहते हो, भक्ति के विना शरीर को मृतक ही जानो, जो जिया चाहो, तो श्री-प्रभु के पद में प्रीति कर, श्रीनाम यश को गान करो" ॥

(स०) "राम है मातु, पिता, सुत, बन्धु, औ संगि, सखा, गुरु, स्वामी, सनेही । राम की सौं है, भरोसो है राम को, रामरँगी रुचि, राचौ न केही ॥ जीवत राम, मुए पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही । सोई जिये जगमैं तुलसी, न त डोलत और मुए धरि देही ॥ १ ॥"

(७४९) टीका । कवित्त (८४३–७४९ = ९४)

कही तुम कटी नाक, कटै जौपै होय कहूं, नाक एक भक्ति, नाक लोक में न पाइयै । वरस पचास लगि विषै ही में वास कियौ, तऊ न उदास भये चबेकों चबाइयै ॥ देखे सब भोग मैं न देखे, एक देखे श्याम, तातें तजि काम तन सेवा मैं लगाइयै । एततेंज्यौं प्रात होत, ऐसे तम जात भयौ, दयौ लै सरूप प्रभु, गयौ, हिये आइयै ॥ ५८९ ॥ (६२९ –५८९ = ४०)

वार्तिक तिलक ।

और, "जो तुमने कहा कि मेरी नाक कटगई सो बिना विचार का वचन है क्योंकि कटै तो तब जो कहीं नाक हो भी तो ? नाक तो एक भगवद्भक्ति ही है, सो भक्ति के बिना इस लोक में और स्वर्गलोक में जितने जीव हैं वे सब नकटे ही हैं । विचार करो कि पचास वर्ष तक तुमने विषय भोग किया, तथापि उस्से उदास न हुये, चबाए हुए ही को चबाते हौ, अर्थात् जैसे पशु एकबेर घास को चबाके लील जाता है उसीको फिर पांगुर करके चबाता है, ऐसे ही संसारी लोग कार्य्य एक बेर कर फिर उसी को अनुमोदन चिन्तवन करते हैं । देखो मैंने सब भोगों की ओर देखते भी नहीं देखा, एक श्यामही की ओर देखा । इस्से तुम भी सब काम भोग को तज तन मन को हरि भजन में लगाओ।

"बहु बिधि बचन कठोर कहि, सबै निरादर करौ किनि । बृन्दा बन को छाड़िये, यह आओ मन भूलि जिनि ॥" ऐसा श्री

करमेती जी का उपदेश सुन, जैसे प्रभात होते रात्रि चली जाती है ऐसे ही परशुराम जी का तम अज्ञान चलागया; श्रीकरमेती जी ने एक शालिग्राम स्वरूप दिया, सो लेकर घर को चलेगये, श्रीकरमेती जी के वचन हृदय में धारण किये रहे।

(७५०) टीका। कवित्त (८४३-७५०=९३)

आयें निसि घर, हरि सेवा पधराय, चाय मन को लगाय, वही टहल सुहाई है। कहूं जात आवत न भावत मिलाप कहूं, आप नृप पूछे द्विज कहां ? सुधि आई है॥ बोल्यौ कोऊ जन धाम स्याम संग पागे, सुनि अति अनुरागे, वेगि खबर मंगाई है। कहौ तुम जाय "ईश इहांई असीस करौं," कही भूप आयौ, हिये चाह उपजाई है॥ ५९० ॥ (६२९-५९० = ३९)

वार्तिक तिलक।

परशुराम जी रात्रि में अपने घर आये, और श्रीहरि सेवा स्वरूप पधराके उतसाह से मन को लगाकर पूजा टहल भजन करने लगे, किसी का मिलाप अच्छा नहीं लगता, इससे कहीं भी नहीं जाते आते थे।

एक दिन राजा ने स्मृति कर लोगों से पूछा कि "बहुत दिन हुये ब्राह्मण परशुराम जी यहां नहीं आये कहां हैं ?" किसी ने कहा कि " श्री बृन्दावन से आ, अब अपने घर ही में प्रेम से पगे भगवद्भजन करते हैं। " सुनके राजा को अनुराग हुआ; शीघ्रही मनुष्य को भेजकर कहवाया कि " हम दरशन किया चाहते हैं। " श्रीपरशुराम जी ने

उत्तर कहला भेजा कि "मैं राजाजी को यहां ही से आशिर्वाद देता हूं, मनुष्य तन पाकर जिस राजा की सेवा करनी चाहिये उसी की कर रहाहूं।" उसने आकर कहा। सुन कर राजा को दरशनों की प्रीति चाह उत्पन्न हुई ॥

" जो मन से आसा गई, योगी गुरु जगदास ॥
नृप गुरु निश्चय जानियै, जब मन में नृप आस ॥ १ ॥
(चौ०) " जिनके नयन सन्त नहिं देखा।
लोचन मोर पंख के लेखा ॥ २ ॥ "
(दो०)" सन्त दरस को जाइये, तजि आलस अभिमान।
ज्यों ज्यों पग आगे पड़ै, उतने यज्ञ समान ॥ ३ ॥ "

(७५१) टीका। कबित्त (८४३-७५१ = ९२)

देखी नृप प्रीति रीति, पूछी, सब बात कही, नैन अश्रुपात, " वह रँगी स्याम रंग मै " । बरजत आयौ भूप " जायके लिवाय ल्याऊँ पाऊँ जौपै भाग मेरे " बाढ़ि चाह अंग मै ॥ कालिंदी के तीर ठाढ़ी नीर दृग, भूप लखी, रूप कछु औरै, कहा कहै वे उमंग मै । कियौ मनै लाख बेर ऐरै अभिलाष राजा कीनी कुटी, आए देस, भीजें सो प्रसंग मै ॥ ५९१ ॥ (६२९--५९१ = ३८)

वार्त्तिक तिलक।

आकर परशुराम जी की प्रीति देख, राजाने भक्ति होने का हेतु पूछा। आप श्रीकरमैती जी का सब वृत्तात सुना के नेत्रों में आंसू भर कहने लगे कि " वह तो श्यामसुन्दर के रंगमें रँग गई। " राजा ने कहा कि " मैं जाता हूं लिवा

लाऊंगा ।" आपने कि कहा "महाराज ! आप मत जाइये, वह नहीं आवेगी ।"

तथापि राजा ने उत्तर दिया कि मैं जाता हूं जो दरशन पाऊं और लिवा लाऊं तो मेरा बड़ा भाग्य उदय हो"। प्रीति चाह के अधिकता से श्रीवृन्दावन में आकर देखें तो श्रीयमुना जी के तीरमें खड़ी नेत्रों में प्रेम जल भरके प्रभु का चिन्तवन कर रही हैं। राजा ने प्रणाम कर रूप अवलोकन किया तो कुछ और ही अकथनीय अनुराग के उमंग की प्रभा चमक रही है। राजा ने चलने की प्रार्थना की; आपने अभियुक्त उत्तर देदिया। तब यहां ही कुटी बनाने को विनय किया। आपने तब भी बारंबार निषेध किया।

तथापि राजा ने ब्रह्मकुण्ड के पास एक कुटी बनवा ही दी। सो अबतक उपस्थित है। फिर राजा श्रीकरमैती जी के दरशन प्रेम से भीज देशमें आकर भक्तिमें तत्पर हुआ॥

(२३४) श्रीखड्गसेन जी ।

(७९२) मूल । छप्पै (८४३–७९२ = १९१)

गोविंदचंद गुनग्रथन को "खर्गसेन" बानी बिसद॥ गोपी ग्वाल पितु मातु नाम निरनै कियो भारी। दान केलि दीपक प्रचुर अति बुद्धि उ-चारी॥ सखा सखी गोपाल, काल लीला में बितयो। कायथकुल उद्धार भक्ति दृढ़ अनतन चितयो॥ "गौतमी तंत्र" उर ध्यान धरि, तन त्याग्यो

मंडल सरद ॥ गोविन्दचंद गुन ग्रथन कौ "खर्ग-सेन" बानी विषद ॥ (२१–१६१=५३)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगोविन्दचन्द्र जी के गुणोंको ग्रंथित करने के लिये "खर्गसेन (खड्गसेन)" जी की बानी बड़ीही उज्वल थी। गोपिका और ग्वालों के माता पिताओं के नाम ग्रंथों से ढूंढ़ २ कर एक ग्रंथ बनाया, और दान केलि लीला, दीपमालिका चरित्र, बड़ी बुद्धिमानी से रचना किया। श्रीगोपालजी और उनके सखा सखियों की लीला वर्णन ही में अपना सम्पूर्ण काल बिताया। जातिके कायस्थ, अपने कुलका उद्धार करने वाले, दृढ़ भक्तिको छोड़ आपने किसी ओर देखा भी नहीं।

"गौतमी तंत्र" की रीति से ध्यान धर, शरद रास मंडल में, देह को तज नित्य रास मंडल में प्राप्त हुये॥

दोहा—"खरगसेन के प्रेम की, बात कही नहिं जात।
लिखत ललित लीला करत, गएप्रान तजिगात"

(७५३) टीका। कवित्त (८४३–७५३=९०)

ग्वालियर वास, सदा रास कौ समाज करैं, सरद उजारी, अति रंग चढयौ भारी है। भावकी बढनि दृगरूप की चढ़नि तत् थेईकी रढ़नि जोरी सुन्दर निहारी है॥ खेलत में जाय मिले त्यागि तन भावना सो झेलत अपार सुख, रीझि देहवारी है। प्रेमकी सचाई ताकी रीति लै दिखाई, भई भावकनि सरसाई, बात लागी प्यारी है ॥५९२॥ (६२९=५९२=३७)

वार्त्तिक तिलक ।

कहते हैं कि ये श्रीहितहरिवंश जी के संप्रदायभुक्त थे । आप ग्वालियर में बसते सदा रासका समाज करते थे । एक समय शरद ऊंजारी में रास होता था उसमें प्रेमरंग बहुत बढ़गया नृत्य में परस्पर भाव की बढ़न नेत्रों में रूप की चढ़न युक्त "ताताथेई" आदि गान करने वाली श्यामा श्यामकी सुन्दर जोड़ी को निरख भावना से झिलके, अपार सुख को प्राप्त हो, रीझके देहको नेवेछावर कर, तज, नित्य केलि में जामिले ।

दोहा—"चढ़िके काम तुरंग पर, चलिबो पावक माहिं ।
प्रेम पंथ अतिशय कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥१॥

यह प्रेमकी सचाई की रीति दिखाई दी, जिसको देख सुन के भाविकों के मनमें अति सरस्ता हुई । यह बात मुझे बड़ी ही प्यारी लगी ।

(२३५) श्रीगंगग्वाल जी ।

(७५४) मूल । छप्पै (८४३-७५४=८९)

सखा श्यमा मन भावतौ, "गंगग्वाल" गंभीर मति ॥ स्यामाजूकी सखी नाम आगम बिधि पायौ । ग्वाल गाय ब्रजगांव पृथक नीके करि गायौ ॥ कृष्ण केलि सुखसिंधु अघट उर अंतर धरई । ता रसमें नित मगन असद अलाप न करई ॥ ब्रजवास आस, "ब्रजनाथ" * गुरुभक्त, चरण रज अननि गति । सखा श्याम मन भावतौ, "गंगग्वाल"

गंभीर मति ॥ १६२ ॥ (२१४-१६२=५२)

वार्त्तिक तिलक।

" पियप्यारी को जस कह्यौ, रागरङ्ग सों गाइ। "

श्रीश्यामसुन्दर जी के मनभावते सखा श्रीगंगाग्वाल जी बड़ी गंभीर बुद्धिवाले थे। श्रीराधिका जी की सखियोंके नाम आगम ग्रंथों से खोजके, और गायों के नाम, ब्रजग्रामों के नाम, पृथक २ आपने भले प्रकार गान किये। श्रीकृष्णचन्द्र जी की केलि सुखसिंधु एकरस हृदय के अन्तर धारण कर उसीके रसमें सदा निमग्न रहते असत वार्त्ता कभी नहीं करते थे। श्रीब्रज में बसके, ब्रजराज ही की आसा रखते थे; और अपने गुरु श्रीब्रजनाथ * जी की चरण रजके अनन्य गति भक्त थे। (दो०) " काया कसो, कि बन बसो, हँसो, रहो गहि मौन। तुलसी मन जीते बिना, मिटै न, है दुख जौन " ॥ १ ॥ " प्रेम नीर गंभीर अति, कोउ न पावत थाह। मीन लीनरस रसिक जो, सोई पावत ताह " ॥ २ ॥

* सम्भवतः, श्रीवल्लभाचार्य्य जी के प्रपौत्र " श्रीब्रजनाथ जी "

(७५५) टीका। कवित्त (८४३-७५५=८८)

पृथ्वीपति आयो वृन्दावन, मन चाह भई सारंग सुनावै कोउ जोरावरी ल्याये हैं। वल्लभहू संग, सुर भरतही, छायौ रंग, अतिही रिझायो, दृग अंसुवा बहाये हैं॥ ठाढ़ो कर जोरि बिनै करी, पै न धरी हियै, जियै ब्रजभूमि ही, सो वचन सुनाये हैं॥ कैद करि साथ लिये दिल्ली, ते छुटाय दिये "हरीदास तूँवर"

ने आये प्रान पाये है ॥ ५९४ ॥ (६२९—५९३ = ३६)

" जोर्आवरी " = زوری = ज़बरदस्ती = बलात् = बलसे ॥

" कैद " = قید = बन्दी ।

वार्तिक तिलक ।

एक समय अवनीश (बादशाह सम्भवतः अकबर) वृन्दाबनमें आया, मध्यान के समय उसके मनमें चाह हुई कि " यहां कोई अच्छा गानेवाला हो तो मुझे सारंग राग सुनावे" । लोग इन्हींको अति प्रशंसनीय प्रवीण जान, बल से लिवा लाये। एक वल्लभनामगुणीगायक भी साथ में आया; मिलके दोनों के स्वर भरतेही, अतिशय रंग छागया सबके नेत्रों से प्रेमके आंसू बहने लगे ।

अति प्रसन्नता से खड़ा हो हाथ जोड़ भूपाल ने विनय किया कि " मेरे साथ चलिये " । आपने उत्तर दिया कि "मेरा जीवन ब्रजभूमि ही है इसको नहीं छोड़ सक्ता । "

निदान, यवनराज बलात्कार पकड़ साथमें दिल्ली ले ही गया। वहां से राजा "तूँवर हरीदास" (पाटम नगर के राजा हरीदास तोदरजी राजपूत) ने उससे प्रार्थना कर, आपको छुड़वा दिया । ब्रज में आए, प्रियतम के दरशन पाए । " मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे । "

जान पड़ता है कि ये श्रीवल्लभाचार्य्य जी के सम्पदाय में थे ।

(२३६) श्रीसोती जी ।

(७६६) मूल । छप्पै (८४३—७६६ = ८७)

सोती श्लाघ्य संतनि सभा दुतिय दिवाकर जानि

यों ॥ परम भक्ति परताप, धर्मध्वज नेजा धारी। सीतापतिको सुजस वदन सोभित अति भारी॥ जानकी जीवन चरण शरण थाती थिर पाई। नरहरि गुरु प्रसाद पूत पोते चलि आई॥ "राम उपासक" छाप दृढ औरन कछु उर आनियो। सोती श्लाघ्य संतनी सभा दुतिय दिवाकर जानियो॥ १६३॥ (२१४-१६३=५१)

"नेज़ा" = نیزہ = दण्ड।

वार्तिक तिलक।

संतों की सभा में परम प्रशंसनीय श्री "सोती" जी को दूसरे सूर्य जानना चाहिये; जैसे भानु का प्रताप होता है ऐसा ही आप का परम भक्ति रूपी प्रताप था। और धर्म की ध्वजा के दण्ड को धारण करने वालों में उत्तम वीर थे। श्रीसीतापति जी तथा श्रीसरयू अयोध्या जी का बड़े भारी सुयश कथन से आपका वदन अत्यन्त शोभित था। श्रीजानकीजीवन जी के चरणों की शरणगति रूप महानिधि आपके हृदय में स्थिर रक्खी हुई थी।

श्रीगुरु "स्वामी नरहरिदास" जी की कृपा प्रसाद से वह महानिधि पुत्र पौत्रों तक एक रस चली आई। "श्रीराम उपासक सोती" आपकी दृढ़ छाप थी। श्रीसीताराम जी के नाम रूप लीला धाम प्रीति छोड़ मनमें और कुछ भी नहीं चिन्तवन करते थे॥

दोहा--राम सनेही, राम गति, राम चरण--रति जाहि।
तुलसी फल जग जन्म को, दियो बिधाता ताहि॥१॥

(२३७) श्रीलालदास जी।

(७५७) मूल। छप्पै (८४३-७५७=८६)

जीवत जस, पुनि परमपद, लालदास दोनौं लही॥ हृदै हरीगुण खानि, सदा सतसँग अनुरागी। पद्मपत्र ज्यों रह्यौ लोभा की लहर न लागी॥ विष्णु रात सम रीति "बघेरे" त्यों तन त्याज्यो। भक्त बराती वृन्द मध्य दूलह ज्यों राज्यौं॥ खरी भक्ति "हरिषांपुरे" गुरु प्रताप गाढ़ी गही। जीवत जस पुनि परमपद लालदास दोनौं लही॥१६४॥ (२१४-१६४=५०)

वार्तिक तिलक।

जीते में सुयश और शरीर त्यागने पर परमपद श्रीहरि कृपा से श्रीलालदास जी को दोनों दिव्य सम्पत्ति प्राप्तहुये। आपका हृदय श्रीहरि गुणों की खानि था। और सदा सतसंग के अनुरागी थे और जैसे जल में कमल का पत्र रहता है परंतु उसमें जल नहीं स्पर्श होता ऐसेही आप जगतमें थे पर जगत के दोष लोभादिकों की लहर आपको नहीं लगी। जिस रीति से परीक्षितजी ने श्रीमद्भागवत सुनते समाप्त में तनु त्यागा, उसी प्रकार "बँघेरे" (बँबेरे) ग्राम में आप ने भागवत सुनते कथा पूरी होते ही शरीर त्याग दिया।

जैसे बरातियों के वृन्द में दूलह सोहता है, ऐसेही आप भगवतभक्तों के मध्य में शोभा पाते थे । आप ने, अपने गुरुस्थान "हरिषांपुर" में रहके, श्रीगुरुप्रताप से उत्तम भक्ति अति दृढ़ता से ग्रहण किया । इस प्रकार से यश तथा मोक्ष दोनों के आप भागी हुये ।

(२३८) श्रीमाधव ग्वाल ।

(७५८) मूल । छप्पै (८४३–७५८ = ८५)

भक्तनि हित भगवतरची, देही "माधौ ग्वाल" की ॥ निसिदिन यहै बिचार दास जिहि बिधि सुख पावैं । तिलक दाम सों प्रीति हृदै अति हरि जन भावैं ॥ परमारथ सों काज हिये स्वारथ नहिं जानै । दसधा मत्त मराल सदा लीला गुण गानै ॥ आरत हरिगुण सील सम प्रीति रीति प्रति पाल की । भक्तनि हित भगवत रची देही "माधौ ग्वाल" की ॥ १६५ ॥ (२१४ – १६५ = ४९)

वार्तिक तिलक ।

श्रीभगवद्भक्तों के हित करने ही के लिये "श्रीमाधव ग्वाल जी" के देह को श्रीब्रह्मा जी ने रचा । जिस प्रकार भगवतदासों को सुख प्राप्त हो, उसी बिचार में दिनरात लगे रहे थे । तिलकदाम (ऊर्द्ध पुण्ड्र और कण्ठीमाला) से बड़ी ही प्रीति थी, और उसके धारण करनेवाले हरिजन

आपके हृदय में अति प्यारे लगते थे। केवल परमार्थ से प्रयोजन रखते, स्वार्थ जानतेही नहीं थे। प्रेमाभक्ति से मन हंसके समान सदा हरि लीला गुणगान रूपी मुक्ता चुनते थे (दो०) यश तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु। मुकताहल गुणगण चुनइ, राम बसहु मन तासु॥ और हरिगुण सुनने के लिये सदा आर्त रहते थे। बड़ेही शील समता पूर्वक सबसे, और मुख्यतः हरिभक्तों के साथ, निर्मल अन्तःकरण से प्रीति रीति प्रतिपाल करते थे॥ (चौ०) "राम भक्त प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥"

(२३९) श्रीप्रयागदास जी।

(७५९) मूल। छप्पै (८४३–७५९ = ८४)

श्री अगर सुगुरु परतापतें पूरी परी प्रयाग की॥
मानस वाचक काय राम चरणनि चित दीनो॥
भक्तनि सों अति प्रेम भावना करि सिर लीनो॥
रास मध्य निर्जान देह दुति दसा दिखाई। "आ-
ड़ौ बलियौं" अंक महोछौ पूरी पाई॥ "क्यारे"
कलस औली ध्वजा विदुष श्लाघा भाग की।
श्रीअगर सुगुरु परतापतें पूरी परी प्रयागकी
॥ १६६ ॥ (२१४–१६६ = ४८)

वार्तिक तिलक।

श्रीसीताराम कृपा से स्वामी श्री ६ अग्रदास जी को गुरु पाके, उनके प्रताप से "श्रीप्रयागदासजी" की भगवत

भागवत में भक्ति हुई और सब प्रकार से पूरी पड़ी। मन वचन कर्म से श्रीसीताराम जी में तत्पर हो युगल चरणों में चित्त लगाया। और भगवत भक्तों से अति प्रेम भावना कर, उनको आते देख माथे से लेते, अर्थात् चरणोंमें मस्तक रख आगेसे लेकर सेवा किया करते थे।

एक समय "आरा बलिया" ग्राममें संत सेवा की उत्तम ध्वजा गाड़ने का, और "क्यारे ग्राम" में भगवत् मंदिर में कलश चढ़ाने का, महोत्सव था; दोनों ठिकाने से आपको नवता आया। एकही दिन दोनों उत्सव में एक शरीर से कैसे जासकैं और एक उत्सव में जाने से एक का अपमान होता इससे विचार कर दोनों ग्राम के मध्यमें बैठकर दोनोंउत्सव करनेवालों से विनय किया कि "इसी ठिकाने से दोनों ओर पंगति बैठा दो और दोनों ओर से पूरी परस्ते चले आओ दोनों ओर से पूरी प्रसाद दो; मैं दोनों उत्सवों का प्रसाद पाऊंगा"। लोगोंने कहा कि "कोसभर का अन्तर दोनों ग्रामों में है, इतनी पंगति के लिये पदार्थ नहीं पूजेगा" आपने आज्ञा दी कि "श्रीगुरु प्रतापसे सब पूरा पड़ जायगा।"

लोगोंने ऐसा ही किया। आपने दोनों महोत्सव की पूरी प्रसाद पाया, और सबोंही के लिये सब पदार्थ पूरा पूरा होगया।

अन्तमें रासलीला होती थी उसमें प्रभुकी प्रत्यक्ष छवि आपको दीखपड़ी; उसी समय देह त्याग कर भगवत धामको प्राप्त हुये। आपके भाग्य की बड़ाई प्रसंसा विदुख सज्ज-

नों ने किया और किसीने लिखा है कि श्रीप्रयागदास जी ने दो देह धारण कर दोनों उत्सवों में जाके ध्वजा औ कलश चढ़ाया। जैसा हो सो विज्ञ लोग जानें; दोनों होसकता है॥

"खेलै राम रंगीलौ फागरी आज रंगीली फागरी। चन्द्रकला विमलादि रंगीली प्यारी रंगीली नागरी॥ कनक महल भजि कुंज प्रति २ उमगि रखौ अनुरागरी। युगल प्रिया अधिकार सदाकै अग्र स्वामि पद लागरी॥"

(२४०) श्रीप्रेमनिधि जी।

(७६०) मूल। छप्पै (८४३–७६०=८३)

प्रगट अमित गुन "प्रेमनिधि," धन्य विप्र जिहि नाम धर्‍यौ॥ सुन्दर सील सुभाव, मधुर बानी, मंगलकर। भक्तनिकों सुख देन फल्यौ बहुधा दसधातरु॥ सदन बसत निर्वेद, सारभुक, जगत असंगी। सदाचार उद्धार नेम हरिदास प्रसंगी॥ दया दृष्टि बासि "आगरै" कथा लोग पावन कर्‍यो। प्रगट अमित गुन "प्रेमनिधि" धन्य बिप्र जेहिं नाम धर्‍यौ॥ १६७॥
(२१४–१६७= ४७)

वार्तिक तिलक।

श्री"प्रेमनिधि" जी में अपार प्रेम गुण प्रगट था, वास्तव में आप प्रेम के निधि ही थे। इस्से जिस ब्राह्मण ने आपका यह नाम रक्खा था सो धन्य है। प्रेमके साथी और भी

गुण आपमें थे, आप सुन्दर शीलवान स्वभावयुक्त, और मंगल करनेवाली मधुर वाणी आपकी परमानन्ददा थी। भगवत भक्तों को सुख देनवाले प्रेम लक्षण भक्ति रूपी बहुत फलोंसे युक्त मानो कल्प वृक्ष थे। घर रहकर भी वैराग्ययुक्त, सारग्राही, जगत् से असंग थे।

जाति के ब्राह्मण सदाचार नियम में तत्पर, अति उदार, हरिदासोंके संग में निरत भजन में रत हुये। जीवोंके ऊपर उदार दृष्टि कर, (समीप ही वृन्दावन वास छोड़) आगरे में रहकर वहां के लोगों को कथा सुनाके पावन कर भवपार उतार दिया॥ दोहा "परहित रत, सियराम पद, भक्ति, सदा सत्संग। सहज विराग, उदार जे; का बन ? का गृहरंग ? ॥ १ ॥ " जे जन रूखे विषय, पुनि, चिकने रामसनेह । ते बसि नित सियराम पद, कानन रहहिं कि गेह " ॥ २ ॥

(७६१) टीका । कवित्त (८४३ – ७६१ = ८२)

प्रेमनिधि नाम, करैं सेवा अभिराम स्याम, आगरौ महर, निसिसेस जल ल्याइये । बरखा सुरितु, जित तित अति कीच भई, भई चित चिंता " कैसे अपरस आइयै ॥ जौ पै अंधकार ही मे चलौं तौ बिगार होत," चले यों बिचारि "नीच छुवै न सुहाइयै" ॥ निकसत द्वार जब देख्यौ सुकुँवार एक हाथ में मसाल " याके पाछे चले जाइये " ॥ ५९५॥ (६२९–५९४ = ३५)

वार्तिक तिलक

श्रीप्रेमनिधि नाम के भक्त श्रीश्यामसुन्दर की पूजा

सेवा अति अभिराम करते थे । आगरे नगर में रहते, नित्य कुछ रात्रि रहते ही श्रीप्रभु के लिये श्रीयमुना जल लाया करते थे ।

एक दिवस वर्षा के ऋतु में मार्ग में जहां तहां कीच होगई । रात्रि थोड़ी शेष थी, तथापि अंधकार बड़ा था; आपके मनमें चिन्ता हुई कि "किस प्रकार से अछूत जल लाऊं? प्रकाश होनेपर जाऊं तो लोगों से छू जायगा" जो अंधेरे में जाऊं तो भी ठीक नहीं ।" फिर मन में ठीक किया कि "अन्धकार में चलना ही अच्छा है, नीच तो नहीं छूयेंगे" । ऐसा निश्चय कर, घर से निकलते ही देखते क्या हैं कि 'एक सुकुमार हाथ में प्रकाश लिये आगे जा रहा है'।

(दो०) "प्रेम-कि-निधि-प्रति प्रेमनिधि, भर्यो प्रेम उर जाल ।
सोई मूरति धारिकै, प्रकट भयो तिहि काल" ॥१॥
दीप हाथ लियु ढीठ अस, यमुना तट जो चोर ।
कै माखन? कै 'निधि' हरै? हरै कि सखि चित मोर?२

मोहित हो आपने विचारा कि "राम कृपा से इसी के पीछे पीछे चला चलूं" ॥ "जैसै धन धाम भाम श्याम जू के लागे काम, होत अभिराम, दुखग्राम नाशै मन की । जैसे रसिकाई-औ-अनन्यताई-बात मुख शोभित है क्रियामान-ज्ञानबान-जन की ॥ &c."

(७४७) टीका । कवित्त (८४३-७४७=९६)

जानी यहै बात पहुंचाए कहूं जात यह अबही बिलात भले चैन कोऊ घरी है । जमुना लौं आयौ, अचरस जा

लगायौ मन, तन अन्हवायौं, मति वाही रूप हरी है ॥ घट भरि धर्यौ सीस, पट वह आय गयौ, आप गयौ घर, नहीं देखी, कहा करी है। लगी चटपटी अटपटी न समझि परै, भटभटी भई नई, नैन नीर झरी है ॥ ५९६॥ (६२९-५९५=३४)

वार्त्तिक तिलक।

आप यह समझे कि "यह किसी को पहुँचाकर लौटा जाता है, जहां इस्का घर होगा वहां तो चलाही जावेगा भला जय क्षण उजाला है तब ही तक सुख सही।" वह मनमोहन प्रकाशयुत (मशलची) श्रीयमुना जी तक आया; आपने मनमें आश्चर्यमान, तन से स्नान किया परंतु आपकी बुद्धिको उस सुकुमार के रूपने हर लिया। स्नान कर, जल भर, घड़ा माथेपर धर, चले ही, कि झट वही आकर आगे २ चला; अपने घर आप आ पहुँचे कि वह अन्तर्धान हो गया, उसको न देखा! न जानै कहां गया? कुछ पता न चला।

अब तो मन और नेत्रों में उस्के देखने की चटपटी पड़ी, यह अटपटी बात समझ में नहीं आती, नई भटभटी भई कि यह कहां गया? नेत्र विचारे जलकी झड़ी करने लगे ॥

(चौ०) "बरसै मघा झकोरि झकोरी।
मुर दुउ नैन चुवैं जनु ओरी!"

(पद) "नयन लगि जायँ जो राजिव नैन। भटकत हैं दरसन अभिलाषे, खटकत हैं दिन रैन। &c. &c."

(दो०) " पुतरी कारी आंख की, रूप श्याम को मान।
वा सों सब जग देखिये, वा बिन अन्धो मान १॥"

श्रीप्रेमनिधि के सोच विचार तथा अपार प्रेम किस से वर्णन हो सकते हैं ?

(दो०) 'जब लगि भक्ति सकामता, तब लगि कच्ची सेव।
कह कबीर वे क्यों मिलैं, निहकामी निज देव॥

(७६३) टीका। कवित्त (८४३-७६३=८०)

कथा ऐसी कहैं जामें गहै मन भाव भरै, करैं कृपा दृष्टि दुष्टजन दुख पायो है। जायकै सिखायो बादशाह उरदाह भयौ, कही तिया भली को समूह घर छायो है॥ आए चोबदार कहैं चलौ एही बार बार, झारी प्रभुआगे धर्यौ चाहै सोर छायौ है। चलै तब संग गए पूछै नृप रंग कहा ? तियनि प्रसंग करौ ? कहिकै सुनायो है॥ ५९७ ॥(६२९-५९६ = ३३)

वार्तिक तिलक।

श्रीप्रेमनिधि जी श्रीभागवत की कथा इस प्रकार कहते थे कि जिसको मन एकाग्र हो ग्रहण कर प्रेमभाव से भर जाता था। स्वयं पाठक समझ सकते हैं कि श्रीप्रेमनिधि जी की कथन कैसी विलक्षण तथा प्रभावयुक्त होती होगी। जीवोंपर आपकी ऐसी कृपा दृष्टि देख दुष्टोंने स्वभावतः दुख पाकर जाके नृपति (बादशाह) से झूठी निन्दा की कि " उसके घरमें नगरभर के अच्छे अच्छे घरोंकी सब स्त्रियां आके बैठी रहती हैं।

(कवित्त) " आजु कलिकाल ऐसो आयो है

कराल अति, राखै भगवान टेक, तौ तो वृन्द जीजियै। बोलिये न चालिये जु, बैठि, पिंड पालिये जु, आंखि कान दोउ मूंदि, मौनव्रत लीजिये॥ देखी अनदेखी जानि, सुनी अनसुनी मानि, माला गहि पानि, हानि लाभ चित् न दीजिये। कीजियै न रोष जो पै कहै कोऊ बीस सीस, ली जै धरि सीस, जगदीस साखि किजियै॥ १॥"

यवनराज ने सुनते ही क्रोधाग्नि से जलके लोगों को भेजा कि "उस्को बुला लाओ" आकर उनने कहा कि "इसी क्षण चलो"। उस समय आप जलसे झारी भरके प्रभुके पीनेको आगे रखना चाहते थे, पर उन लोगोंका कठोर हांक सुन उनके साथ चल ही दिये।

गये; यवनराज पूछने लगा "तुम्हारा क्या रंग है? हम सुनते हैं कि नगरभर की अच्छी २ नारियों का प्रसंग रखते हो" उस्का कहना सुन आपने उत्तर दिया।

(७६४) टीका। कवित्त (८४३-७६४=७९)

कान्ह भगवान ही की बात सो बखानि कहौं; आनि बैठें नारि नर लागी कथा प्यारी है। काहू कों बिडारै, झिरकारै, नैकु टारै, बिबै दृष्टि कै निहारै, ताको लागै दोष भारी है॥" "कही तुम भली तेरी गली ह्वै के लोग मोसों आयकै जताई वह रीति कछु न्यारी है"। बोल्यौ "याहि राखौ सब करौ निरधार नीके," चले चोबदार लेकै, रोके प्रभु धारी है॥ ५९८॥ (६२९-५९७=३२)

वार्तिक तिलक ।

"खोटी कहनेवालों का मुँह कौन रोके, परन्तु मैं तो श्रीकृष्ण भगवान की ही कथा बखान करता हूं; सुनने के लिये नारी पुरुष सब आकर बैठते हैं क्योंकि सब को प्यारी लगती है; उसमें कोई किसी को अपमान करके उठा दे, या विषय दृष्टि से देखे, तो उसको बड़ा भारी दोष होता है, इससे मैं किसी को निषेध नहीं करता"।

यवनराज ने कहा कि "तुमने तो अच्छी बात कही परंतु तुम्हारे समीप ही के लोगों ने आकर हमसे जताया है कि "उसकी रीति कुछ और ही प्रकार की है"। ऐसा कह, सेवकों को आज्ञा दी कि "ले जाओ, इसको नज़र बन्द (बन्धन में पहरे में) रक्खो, इसका निर्णय हो जायगा, तब छोड़ेंगे"। आज्ञा सुन चोबदारों ने लजाकर बन्धन में डाल रक्खा।

श्रीप्रेमनिधि जी प्रभु से प्रार्थना करने लगे।
प्रभुने कृपाकर विनय को श्रवण में धारण किया॥

(७६९) टीका। कवित्त (८४३-७६९=७८)

सोयौ बादशाह निसि, आयकै सुपन दियौ, कियौ वा कौ इष्टभेव, कही "प्यास लागी है" "पीवौ जल," कही "आबखाने लै बखाने" तब अति ही रिसाने "को पिवावै, कोऊ रागी है!" फेर मारीलात अरे सुनी नहीं बात मेरी; आप फुरमावौ जोई प्यावै बड़ भागी है॥ सोतौ ते लै कैद कर्यो सुनि अरबर्यो डर्यौ भर्यौ हिये भाव

मति सोवत तें जागी है ॥ ५९८ ॥ (६२९–५९८ = ३१)

"फ़रमाओ" = فرماؤ = आज्ञा कीजिये।

वार्तिक तिलक।

जब रात को यमनराज सोया, तब प्रभुने यवनों के इष्ट देव (मुहम्मद "साहिब) का रूप वेष बनाकर स्वप्न में उसको आज्ञा की कि "हमको प्यास लगी है," सुनके भूपाल ने सादर कहा कि "जल पीजिये"। आपने पूछा कि "पानी कहां है?" उसने बताया "आबखाने में है।"

तब आपने रिस में आकर कहा कि "वहां कोई प्रेमी सेवक तो है ही नहीं, पिलावे कौन?" वह कुछ न बोला। तब आपने उसको एक लात मारकर पूछा कि "अरे तूने हमारी बात सुनी नहीं?" तब घबड़ाके कहने लगा कि "जिस बड़भागी को आप आज्ञा दीजिये सो पिलावे" आपने आज्ञा की कि "उस पिलाने वाले प्रेमी को तो तूने पकड़कर क़ैद किया है।"

ऐसा सुन बादशाह बहुत घबड़ाया, डरा, और उसके हृदय में भक्तिभाव उत्पन्न हुआ। उसकी सोती हुई बुद्धि जाग उठी और स्वयं उसकी भी नींद टूट गई॥ "अब समझे कछु सो नरनाहू। टेढ़ देखि शंका सबकाहू"॥

(दो०) "सन्तननिन्दा अति बुरी, भूलि सुनो जनि कोइ।
किये सुने सब जन्मके, सुकृत डारै खोइ॥ १॥"

(७६६) टीका। कवित्त (८४३–७६६ = ७७)

दौरे नर ताही समै खोलि दै किवार ल्याए, देखि लपटाये

पाय नृप; हग भीजे हैं । "साहिबू तिसाये, जाय अबही पिवावौ नीर, और पै न पीवैं, एक तुमही पै रीझे हैं ॥ लेवौ देस गांव," "सदा पीवहीं सों लाग्यौ रहौं, गहौं नहीं नेकु धन पाय बहु छीजे हैं"। संग दै मसाल, ताही काल में पठायें, यों कपाट-जाल खुले, लाल प्यायौ जल, धीजे हैं ॥ ५९९॥
(६२९-५९९ = ३०) वार्त्तिक तिलक।

यवनराज की आज्ञा से उसी क्षण लोग दौड़ जाके श्रीप्रेमनिधि जी को लिवालाये, बादशाह देख नेत्रों में प्रेम के आंसू भर आपके चरणों में पड़के कहने लगा कि "साहिबू को तृषा लगी है; और के हाथ से नहीं पीते; एक आपही पर प्रसन्न हैं, आप शीघ्र अभी जाकर जल पिलाइये; और मुझसे देश गांव जो चाहिये सो लीजिये, मुझे दास समझिये, मैं सदा चरणों ही से लगा रहूंगा।"

आपने उत्तर दिया कि "मैं उसी से लगा रहता हूं धन कुछ भी नहीं लूंगा मुझको बहुत धन मिला और चला गया। धन अनित्य है।"

बादशाह ने उसी क्षण प्रकाश के साथ आपको घर भेजवा दिया। सब किवाड़ खुले, आके स्नानकर, आपने प्रभु को जलपान कराया। आप प्रसन्न हुये और प्रभु भी प्रसन्न हुये ॥ श्रीप्रेमनिधि जी की जय। प्रेम की जय जय जय॥

(२४१) श्री राघवदास दूबलो जी।

(७६७) मूल। छप्पै (८४१-७६७ = ७६)

दूबलो जाहि दुनियां कहै सो भक्त भजन मोंटो

महंत ॥ सदाचार गुरु शिष्य, त्याग विधि प्रगट दिखाई। बाहेर भीतर बिसद, लगी नहिं कलियुग काई॥ राघौ रुचिर सुभाव असद आलाप न भावे। कथा कीर्त्तन नेम मिलें संतनि गुन गावे॥ तायतालि पूरौ निकष ज्यों घन अहरनि हीरौ सहंत। दूबलो जाहि दुदियां कहे सो भक्त भजन मोटौ महंत॥ १६८॥ (२१४-१६८=४६)

वार्तिक तिलक।

जिन राघव को संसार के लोग "दुबलेजी" वा "दूबरजी" कहते हैं, सो भगवद्भक्ति और नामस्मरण भजन में बड़े मोटे महंत थे। सुन्दर आचार तथा गुरु शिष्य की रीति त्याग विधि आपने अपने आचरणों से प्रगट दिखा दिया। बाहर और भीतर हृदय से अति निर्मल थे। कलियुग की काई मलीमता नहीं लगने पाई। "श्री राघवदास दुबलेजी" का स्वभाव बहुतही अच्छा था क्योंकि आपको असद वार्ता का कहना सुनना प्रिय नहीं लगता था। संतों में मिले हुये नियम से श्रीहरिकथा नाम कीर्तन प्रभु के गुणों को सदा गाते थे। जैसे सुवर्ण को तपाय के कसौटी में कसने से चोखाई की परिक्षा होती है और हीरा की अहरनि (निहाई) पर रखकर घन की चोट सहने से परीक्षा होती है ऐसेही आप गुरु संतों की चोट सहने वाले परीक्षा में पूरे थे, भक्ति, भजन और सत संग में मोटे महन्त थे॥ अपने पदों में आप "दुबरा" वा "दूबर" छाप (भोग) रखते थे॥

(७१८) मूल । छप्पै (८४३-७१८=७५)

दासनि के दासत्त को, चौकस चौकी ए मढ़ी ॥
हरिनारायणं, नृपति पदमं, "बेरछै" विराजैं ।
गाँव "हुसंगाबाद" अटलं, ऊधौ, मलछाजैं ॥
मेलै तुलसीदासं, भट ख्यात, देव कल्यानौ । बो-
हिथ बिगरामदास, "सुहेलै" परम सुजानौ ॥
"औली" परमानँद के ध्वजा सबल धर्म की
गढ़ी । दासनि के दासंत को चौकस चौकीए
मढ़ी ॥ १६९ ॥ (२१४ - १६९ = ४५)

वार्तिक तिलक ।

श्री भगवतदासों की दासता के लिये, ये चौकस चौकी मढ़ी हुए अर्थात् जैसे मार्ग चलने वालों को टिकने की चौकियां होती हैं, ऐसेही श्री भगवतदासों के रहने के अर्थ इन संतसेवियों के पुनीत गृह सुशोभित हुये;

(१।२) बेरछैं ग्राम में श्रीहरिनारायणं जी, और राजा पदुमं जी विराजमान हुए ।

(३।४) हुसंगाबाद नगर में श्रीअटलं जी और ऊधो जी बहुत अच्छे शोभित हुये ।

(५।६) पासही में मिले हुये श्रीतुलसीदासं जी तथा देवकल्यानं जो संतसेवा में विख्यात सुभट थे ।

(७) सुहेले में भवसागर की नौका सरीखे विगरामदासं जी परम सुजान थे । और—

(८) "औली" में श्रीपरमानन्द जी के द्वार पर भागवत धर्म की दृढ़ ध्वजा गड़ी थी ॥

(७६९) मूल । छप्पै (८४३–७६९ = ७४)

अबला सरीर साधन सबल एबाई हरिभक्ति बल ॥ देमा, प्रगट सब दुनी, रामाबाई, बीरां, हीरामनि । लाली, नीरां, लक्षि, जुगल पार्वती, जगत धनि ॥ खीचनि, केसा, धनो, गोमती, भक्त उपासिनि । बादरानी, विदित गंगो, जमुनां, रै दांसिनि ॥ जेवां, हरिषां, जोइंसिनि कुवरिरायें, कीरति अमल । अबला सरीर साधन सबल ए बाई हरि भक्ति बल ॥ १७० ॥ (२१४–१७० = ४४)

वार्तिक तिलक ।

इन बाइयों की शरीर तो अबला स्त्रियों के थे, परंतु सबल साधन करके ये श्रीहरिभक्ति में बड़ी बलवान हुई ।

(१) सब जगत में प्रगट श्रीदेमाबाई जी
(२) श्रीरामाबाई जी
(३) श्रीबीरांबाई जी
(४) श्रीहीरामनि जी
(५) श्रीलाली जी
(६) श्रीनीरां जी
(७) श्रीलक्ष्मीबाई जी
(८।९) दोनों "पार्वती" जगत में धन्य हुई
(१०) श्रीखीचनि जी
(११) श्रीकेशीन जी
(१२) श्रीघनाबाई जी
(१३) श्रीगोमती जी, श्रीहरिभक्तों की उपासना करनेवाली
(१४) जगत विख्यात् श्रीबादरानी जी

(१५) श्रीगंगाबाई जी
(१६) श्रीयमुनाबाई जी
(१७) श्रीरयदासिनि जी
(१८) श्रीजेवाबाई जी
(१९) श्रीहरिषांबाई जी
(२०) श्रीजोइसिनि जी
(२१) निर्मलकीर्तियुक्त श्रीकुँवरिराइ जी

(२४२) श्रीकान्हरदास जी।

(७७०) मूल। छप्पै (८४१–७७० = ७१)

कान्हरदास संतनि कृपा हरि हिरदे लाहो लह्यो॥
श्रीगुरु शरणौ आय भक्ति मारग सत जान्यो।
संसारी धर्महि छाँड़ि झुंठ अरु सांच पिछान्यो॥
ज्यों सारवा द्रुम चंद जगतसों इहिं बिधि न्यारो।
सर्वभूत सम दृष्टि गुननि गंभीर अति भारो॥
भक्त भलाई बदन नित कुवचन कबहुं नाहिन कह्यो। कान्हरदास संतनि कृपा हरि हिरदे लाहो लह्यो॥ १७१॥ (२१४ – १७१ = ४३)

वार्तिक तिलक।

श्रीकान्हरदास जी ने संतों की कृपा से अपने हृदय में परम लाभ श्रीहरिस्वरूप को पाया। श्रीगुरु शरण में आकर सुन्दर भक्ति के मार्ग को यथार्थ जाना, संसारियों के धर्म कर्मों को छोड़, जगत को झूठा तथा आत्मस्वरूप को सत्य पहिचाना। जैसे लोग बतलाते हैं कि "अमुक वृक्ष की शाखापर वह चन्द्रमा दिखाता है" पर चन्द्रमा

उस शाखा से लाखों कोस पर है, इसी प्रकार चन्द्रशाखा न्याय से श्रीकान्हरदास जी कहने मात्र ही को तो संसार में रहे परन्तु वस्तुतः पृथक् थे । और सर्व भूतों में सम दृष्टि से भगवद्रूप ध्यान देखते; शुभ गुणों से भरे, अति गंभीर, समुद्र के समान थे; अपने मुख से भगवद्भक्तों की भलाई बड़ाई सदा कहते; कुवचन कभी न बोले । इस प्रकार आपने अपने हृदय में हरि रूप का लाभ उठाया ॥

(२४३।२४४) श्रीकेशवलटेरा श्रीपरशुराम जी ।

(७७१) मूल । छप्पै (८४३–७७१ = ७२)

लट्यौ लटेरा आन विधि, परम धरम अति पीन तन ॥ कहनी रहनी एक एक प्रभु पद अनुरागी । जस वितान जग तन्यौ संत संमत बड़ भागी ॥ तैसोई पूत सपूत नूत फल जैसोई परसा । हरि हरिदासनि टहल, कवित रचना पुनि सरसा ॥ (श्री)सुरसुरानंद संप्रदाय दृढ़ "केसव" अधिक उदार मन । लट्यौ लटेरा आन विधि, परम धरम अति पीन तन ॥ १७२ ॥ (२१४–१७२ = ४२)

वार्त्तिक तिलक ।

(१) श्रीकेसवलटेरा जी जगत के विधि से अति दुर्बल थे ।
(दो०) "नारायण तू भजन कर, काह करैंगे कूर ।
अस्तुति निन्दा जगत की दोउनके शिर धूर" ॥

और परमधर्म श्रीभगवद्भक्ति से परम पुष्ट थे ।

(दो०) स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम्ह तात ।
तिनके मन मन्दिर बसहु, सीयसहित दोउ भ्रात ॥

आपकी कहनी और रहनी एक समान थी, तथा श्री सीतारामचरणानुराग में अद्वितीय थे । आपके संतसंमत सुयशका वितान लोक में तन गया था ।

(२) जैसे बड़भागी श्रीकेशव जी थे वैसेही आपके सुकृत वृक्ष के नवीन फल सपूत पूत श्रीपरशुराम जी श्रीहरि और हरिदासों की सेवा टहल में तत्पर हुये। तथा हरि यशयुक्त कवित्त अति सरस रचते थे । श्री १०८ सुरसुरानन्द स्वामी जी के संप्रदाय में दृढ़ श्रीकेशव लटेरा जी अतिशय उदार मन वाले हुये ॥ स्वामी श्री १०८ सुरसुरानन्द जी की जय ॥

(२४५) श्रीकेवलराम जी ।

(७७२) मूल । छप्पय (८४३–७७२ = ७१)

केवलराम कलियुग के पतित जीव पावन किया ॥ भक्ति भागवत विमुख जगत गुरु नाम न जानै । ऐसे लोक अनेक ऐंचि सनमारग आनै ॥
निर्मल रति निहकाम, अजा तें सदा उदासी ।
तत्व दरसी तम हरन सील करुना की रासी ॥
तिलक दाम नवधार तन कृष्ण कृपा करि दृढ़ दिया ।
केवलराम कलियुग के पतित जीव पावन किया ॥ १७२ ॥ (२१४–१७२ = ४१)

वार्तिक तिलक ।

श्रीकेवलराम जी ने कलियुग के पतित जीवोंको पावन किया । जो जगत के जीव भक्ति भक्त भगवंत गुरु को नाम मात्र भी नहीं जानते थे, उनको भी विमुखता से खींचकर, भक्ति सतमार्ग में आरूढ़ करदिया । प्रभुके विषे आपकी निर्मल प्रीति थी, विषै सुखसे निष्काम, माया से सदा उदासीन रहते थे । अनात्म, आत्म, परमात्म तीनों तत्वों को ज्ञान दृष्टि से यथार्थ देखनेवाले विवेकी थे और सब जीवों का अज्ञान रूपी अन्धकार हरनेवाले, शील और करुणा की राशि ही थे । आपने जीवों को तिलक कंठी माला और नवधा भक्ति रूपी रत्न तथा श्रीकृष्ण कृपालुता भले प्रकार दृढ़ादी । इस प्रकार कलियुग के बहुत से पतित जीव आपने पावन किये ।

(७७२) टीका । कवित्त (८४१ – ७७१ = ७०)

घर घर जाय कहै यहै दान दीजै मोकों कृष्ण सेवा कीजै नाम लीजै चित लायकै । देखे भेषधारी दस बीस कहूं अनाचारी, दये प्रभु सेवनिकों रीति दी सिखायकै ॥ करुणा निधान कोऊ सुनै नहीं कान कहूं , बैल के लगायो सांटो लोटे दया आयकै । उपट्यौ प्रगट तन मन की सचांई अहो, भए तदाकार कहौं कैसे समझायकै॥ ६०० ॥ (६२९ – ६०० = २९)

वार्तिक तिलक ।

आप सबों के घर में जा जाके यही कहते थे कि "श्रीकृष्ण सेवा करो और चित्त लगाके उनका नाम

लिया करो; मुझे यही दान दो।" जहां कहीं दस बीस वैष्णव वेषधारी अनाचारी देखते थे, उनको अपने पाससे प्रभुकी मूर्तियां देकर सेवा पूजा भजन की रीति सिखला देते थे।

करुणानिधान तो आप ऐसे थे कि वैसा कहीं कोई कानों से सुन्नेमें भी नहीं आता, एक समय मार्ग में कोई बनजारा बैल लिये जाता था, आप भी पास पास चले जारहे थे, उसने अपने बैलको एक सांटी मारी, यह देखते ही श्रीकेवलराम जी दया से भूमि पर गिरपड़े, लोगोंने उठाकर देखा तो आपकी पीठ में वही सांटी ज्यौं की त्यौं प्रत्यक्ष उपटी है! देखिये, आप के मन की कृपा की सचाई कि तदाकार होगये। यह आश्चर्य रीति किस प्रकार कहने और समझाने में आसक्ती है?

(२४६) श्रीआसकरन जी।

(७७४) मूल। छप्पै (८४३-७७४ = ६९)

श्रीमोहन मिश्रित पद कमल, "आसकरन" जस बिस्तर्‍यो ॥ धर्मसील गुनसींव महा भागौत राजरिषि। पृथीराजकुलदीप भीमसुत बिदित कील्ह सिषि॥ सदाचार अति चतुर बिमल बानी रचना पद। सूरधीर उद्दार बिनै भल पन भक्तनि हद॥ सीतापति राधासुवर भजन नेम कूरम धर्‍यौ। श्रीमोहन मिश्रित पद कमल "आसकरन" जस बिस्तर्‍यौ॥१७४॥(२१४-१७४ = ४०)

वार्तिक तिलक

श्रीजानकीमोहन और श्रीराधिकामोहन दोनों मोहन मिश्रित चरण कमलों की आसा करनेवाले श्री"आसकरनजी" ने प्रभुका तथा अपना यश विस्तार किया। आप, कूर्मवंशी (कछवाह) श्रीपृथीराज जी के कुलके दीपक, भीमसिंह जी के पुत्र, श्री स्वामी कील्हदेवजी के शिष्य, नरवरगढ़ के राजा परम विख्यात हुये। बड़े धर्मशील, शुभ गुणों के सीम, महा भागवत राजर्षि, सूर, धीर, अति उदार, विनययुक्त, सदाचार तत्पर, हरिभक्तों से अनुराग तथा भलप्पन करने वालों में श्रेष्ठ हुये। विमल वानी से, प्रभु सुयशयुत पद, रचना करने में अति चतुर थे। श्रीसीतापति और श्रीराधावर के पूजन भजन का नियम आपने अपने हृदय में दृढ़ धारण किया॥

(७७५) टीका। कवित्त (८४३-७७५ = ६८)

नरवरपुर ताकौ राजा नरवर जानौ मोहन जू धरि हियें सेवा नीकें करी है। घरी दस मंदिर में रहैं रहै चौकी द्वार, पावत न जान कोऊ ऐसी मति हरी है॥ पर्यौ कोऊ काम आय अबही लिवाय ल्यावौ कहै पृथीपति लोग कान में न धरी है। आई फौज भारी, सुधि दीजियै हमारी, सुनि वहू बात टारी, परी अति खरबरी है॥ ६०१॥(६२९-६०१ = २८)

वार्तिक तिलक।

श्रीआसकरन जी सब नरों में श्रेष्ठ नरवरगढ़ के राजा युगलमोहन जी को हृदय में धारण कर बहुत अच्छी सेवा पूजा इस प्रकार करते थे कि दश घड़ी दिन चढ़े तक मंदिर

में रहते थे, और द्वारपर चौकी खड़ी रहती थी कि उतने समय भीतर कोई भी नहीं जाने पाता था। ऐसी मति भजन में एकाग्र थी।

एक समय संयोगवश नरवरगढ़ में बादशाह आया और दोपहर के पहिले ही सुभटोंको आज्ञा दी कि "आसकरन जी को अभी लिवा लाओ" राजभटों ने, आकर भक्तराज के द्वारपालों से कहा, पर किसी ने उन दूतों की नहीं सुनी। तब बहुत भारी सेना आई; सेनापति ने कहा कि "राजा को हमारी बात सुनाओ" लोगों ने वह बात भी टालदी। तब सेनापति लोग क्रोध से अति आतुर हुये।

(७७६) टीका। कवित्त (८४३–७७६ = ६७)

कहिकै पठाई, "कहौ कीजियै लराई," सुनि रुचि उपजाई चलि पृथीपति आयो है। पर्यौ सोच भारी, तब बात यों बिचारी कही "आप एक जावौ," गयौ अचिरज पायो है॥ सेवा करि सिद्धि, साष्टांग ह्वैकै भूमि परे, देखि बड़ी बेर, पांव खड्ग लगायो है। कटिगई एड़ी, ऐपै टेढ़ीहू न भौंह करी करी नित नेम रीति धीरज दिखायौ है॥ ६०२॥ (६२९–६०२ = २७)

वार्त्तिक तिलक।

सेनापति ने बादशाह के पास कहला भेजा कि "यदि आज्ञा हो तो हम युद्ध का आरंभ करें, क्योंकि हमारा वृत्तान्त राजा के पास कोई भी पहुंचाता ही नहीं।" सुनकर बादशाह के मनमें राजा के देखने की रुचि उत्पन्न हुई। स्वयं आया।

तब राजा के मंत्री आदिकों को बड़ा सोच पड़ा, विचार कर यवनाधीश से बोले कि "केवल एक आप मंदिरके भीतर जाइये"। मनमें आश्चर्य मान भीतर जाकर देखा कि 'आसकरन जी पूजा समाप्त कर भूमिमें पड़े साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं'। "प्रेम सहित अँसुअन ढरे, धरे युगल को ध्यान।
नारायण ता भक्तको, जगमें दुर्लभ जान॥"

ध्यानयुक्त बड़ीबेर पड़ेदेख, यवनराज ने राजा के चरण में धीरे से खड्ग मारा। आपकी एड़ी कटगई तथापि न दुख का कुछ भान, और न भौंह तक टेढ़ी हुई। जिस प्रकार नित्य प्रणाम करने का नियम था उसी प्रकार धैर्य देखने में आया

(चौ०) मन तहँ, जहँ रघुबर बैदेही।
बिनु मन, तन दुख सुख सुधि केही॥

(७७७) टीका। कवित्त (८४३–७७७=६६)

उठि चिक डारि; तब पाछें सों निहारि, कियो मुजरा बिचारि, पातशाह अति रीझे हैं। हित की सचाई यहै, नेकु न कचाई होत, चरचा चलाई भाव सुनि सुनि भीजे हैं॥ बीते दिन कोऊ नृपभक्त सो समायौ, पृथीपति दुख पायौ, सुन्यो भोग हरि छीजे हैं। करैं विप्र सेवा तिन्हें गाँव लिखि न्यारे दिये वाके प्रान प्यारे लाड करौ कहि भीजे हैं॥६०३॥
(६२९–६०३=२६)

"मुजरा"=مجرا=जुहार, प्रणाम।

वार्त्तिक तिलक।

फिर उठकर प्रभुके मंदिर में चिलमन (व्यवधान,

चिक) डाल, पीछे देखा, बादशाह को खड़े पा, यथोचित जोहार किया। बादशाह, राजा की भक्ति प्रीति नियम की सचाई तथा दृढ़ता देख विचारकर अतीव प्रसन्न हुआ।

फिर कुछ भाव भक्ति का प्रश्न किया। श्रीआसकरन जी के मुख से उत्तम उत्तर सुन, सरस हृदय होकर, चला गया॥ "जो प्रभु से सच्चा सो जीता।

श्रीहरि सांचे मन के मीता॥"

कुछ कालान्तर में वह भक्त राजा (श्रीआसकरन जी) भगवत धाम को पधारे; बादशाह सुन बड़ा दुखी हुआ। पीछे यह भी सुना कि "उनके प्रभु को भोग राग यथार्थ नहीं लगता।" तब पूजा सेवा करनेवाले ब्राह्मणों को राज्य से न्यारे ग्राम लिखदिया और कहा कि "आसकरन जी के प्राण प्यारे प्रभु को यथार्थ पूजन प्रेम लाड़ प्यार किया करो।" ब्राह्मण वैसाही करनेलगे। यवन राज अति प्रसन्न हुये॥ "धीजे हैं" = प्रसन्न सुखी हुए।

(२४७) श्रीहरिवंश जी।

(७७८) मूल। छप्पै (८४३–७७८ = ६५)

निहिकिंचनभक्तनि भजै हरि प्रतीति "हरिवंस" के॥ कथा कीर्तन प्रीति, संत सेवा अनुरागी। खरिया खुरपा रीति ताहि ज्यों सर्बसु त्यागी॥ संतोषी, सुठि, सील, असद आलाप न भावै। काल वृथा नहिं जाय निरंतर गोविंद गावै॥

सिष सपूत श्रीरंग को उदित पारषद अंस के।
निहिकिंचन भक्तनि भजै हरि प्रतीति हरिवंस के
॥ १७५ ॥ (२१४-१७५ = ३९)

वार्त्तिक तिलक।

निष्किंचन होके अर्थात् कुछ पदार्थ का संग्रह नहीं रखके, श्रीहरि विषे प्रीति प्रतीति युक्त होके, "श्रीहरिवंश भक्त" निष्किंचन (विरक्त) हरिभक्तों की सेवा करते थे। (चौ०) तेहिते कहत सन्त श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरिकेरे॥

श्रीसीताराम कथा श्रवण तथा नाम कीर्तन में अति प्रीति, और संत सेवा में परम अनुराग था।

"रसिकन को सतसंग नित, युगल ध्यान दिन रैन।
परम विराग सुवेष वर, बोलत सुखद सुबैन॥"

जैसे एक समय एक राजा ने गंगास्नान कर अपने पास के लाखों रुपये के पदार्थ दान कर दिये, और उसी समय एक घसियारा जिसके पास केवल खरिया (जाली) और खुर्पा मात्र था उसने भी दोनों (सर्वस्व) दान करदिया; स्वर्ग में राजा और घसियारा दोनों में घसियारा राजा से उत्तम लिखा गया क्योंकि घसियारेने अपना सर्वस्व दान किया; ऐसेही "हरिवंश जी" सर्वस्व के त्यागी (दानी) थे।

अति संतोषी, परम सुशील थे; असत् वार्ता का कहना और सुनना आपको कभी न अच्छा लगता, थोड़ा भी काल वृथा नहीं जाता; निरन्तर श्रीगोविन्द गुणगान करते थे। श्रीरंग जी के बड़े सपूत शिष्य श्रीहरिवंश जी भगवत पार्षदों के अंशसे उदय (प्रकट) हुये॥

(२४८) श्रीकल्यान जी ।

(७७९) मूल । छप्पै (८४३–७७९ = ६४)

हरिभक्ति भलाई गुन गँभीर, बांटें परी कल्यान के ॥ नवकिशोर दृढ़व्रत अनन्य मारग इक धारा । मधुर वचन मन हरन सुखद जानत संसारा ॥ पर उपकार बिचार सदा करुना की रासी । मन वच सर्बस रूप भक्तपद रेनु उपासी ॥ "धर्मदास" सुत सीलसुठि मनमान्यौ कृष्ण सुजान के । हरिभक्ति भलाई गुन गँभीर बाँटे परी कल्यान के ॥ १७६ ॥ (२१४—१७६ = ३८)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीहरि भक्ति, और सबसे भलाई करनी, तथा सन्त गुणोंकी गंभीरता "श्रीधर्मदास जी के पुत्र श्रीकल्यान भक्त जी" के बखरे में पड़गई । नवल नन्दकिशोर के दृढ़ प्रेमव्रत में आपकी अनन्य मनकीवृत्ति नदी के धारा की नाईं एकरस लगी रहती थी । मनहरन मधुर वचनों से सब को सुखद थे यह बात संसार में विदित थी । सदा परोपकार, सारासार विचार, और करुणा की राशि थे । मन वचन तन धन सर्वस्व रूपसे हरिभक्तों के चरणों की रेणु की उपासना करते थे। आप सुठि, सुशीलयुक्त, श्रीकृष्ण सुजान जी के मनके भावते हुये ॥

(२४९) श्रीबीठलदास जी।

(७८०) मूल। छप्पय (८४१-७८० = ६१)

बीठलदास हरिभक्ति के, दुहूं हाथ लाडू लिया॥ आदि अंत निर्वाह भक्तपद रज व्रतधारी। रह्यो जगत सों अड तुच्छ जाने संसारी॥ प्रभुता पति की पधति प्रगट कुल दीप प्रकासी। महत सभा में मान जगत जान रै दासी॥ पद पढ़त भई परलोक गति गुरु गोविंद जुग फल दिया। "बीठलदास" हरि भक्ति के, दुहूं हाथ लाडू लिया॥ १७७॥ (२१४ - १७७ = ३७)

वार्तिक तिलक।

श्रीवीठलदास जी दोनों हाथों में श्रीहरि भक्ति के लड्डू लिये अर्थात् जीवनावधि इस लोक में हरि भक्ति मय सुयश, और शरीर छूटने पर भगवत्धाम का लाभ उठाया। श्रीहरि भक्तों के चरण रज सेवन का व्रत धारण कर आदि से अंत तक निर्वाह किया; जगत से ऐड़ युक्त होकर संसार के धनी लोगों को तुच्छ समझा। प्रभुता पति की पद्धति अर्थात् श्रीश्री (लक्ष्मी) संप्रदाय में प्रगट कुलदीप होकर प्रकास किया।

सब जगत जानता था कि आप रैदास जी के वंश में उत्पन्न हुये तथापि महज्जनों के सभा में आपका बड़ा मान होता था। श्रीरामसुयश युत पदको पढ़ते पढ़ते परलोक

गति हुई अर्थात् तन तजके श्रीराम धाम को प्राप्त हुये । इस प्रकार श्री गुरु गोविंद ने युगल फल दिये ।

(७८१) मूल । छप्पै (८४३-७८१ = ६२)

भगवंत रचे भारी भगत भक्तनि के सनमान को ॥ " क्वाहब " श्रीरँग[1] सुमति, सदानँद[2] सर्वसु त्यागी । स्यामदास[3] " लघुलंब " अनानि, लाखै[4] अनुरागी ॥ मारू मुदित कल्यान[5], " परस " वंसी नारायन[6] । " चेता " ग्वाल गोपाल[7], संकर[8] लीला पारायन ॥ संत सेय कारज किया तोषत स्याम सुजान कों । भगवंत रचे भारी भगत भक्तन के सनमान को ॥ १७८ ॥ (२१४-१७८ = ३६)

वार्तिक तिलक ।

श्रीभगवन्त ने, अपने भक्तों के सन्मानके अर्थ, अपने इन भारी भक्तों को बनाया । जिनने सन्तों की सेवा की और अपने कार्य से श्रीश्याम सुजान को संतुष्ट किया ।

(१) क्वाहब ग्राम में श्रीरंग जी सुन्दरमति वाले
(२) श्रीसदानन्द जी, अपना सर्वस्व त्याग करने वाले
(३) श्रीलघुलंब ग्राम में श्रीश्यामदास जो अनन्य
(४) श्रीलाखैजी अनुरागी
(५) मारवाड़ में श्रीकल्यान जी मुदित सन्तसेवक
(६) परस में श्रीबंशीनारायणजी
(७) चेता में गोपाल जी ग्वाल
(८) भगवतलीलापरायण श्रीशङ्कर जी

(२५०) श्रीहरीदास जी।

(७८२) मूल। छप्पै (८४३-७८२=६१)

तिलक दाम पर कामकों "हरीदास" हरि निर्मयो ॥ सरनागत कों "सिवर;" दान "दधीच;" टेक "बलि"। परम धर्म प्रहलाद; सीस "जगदेव" देनकालि ॥ बीकावत बानैत भक्तपन धर्म धुरंधर। तूंवर कुल दीपक, संत सेवा नित अनुसर ॥ पारथ पीठ अचरिज कौन सकल जगत में जस लियो। तिलक दाम पर काम कों हरीदास हरि निर्मयो ॥ १७१ ॥ (२१४-१७९=३५)

"पारथपीठ"=श्रीपारथ (अर्जुन) जी की पीढ़ी (वंश) में।

तिलक कंठी माला मात्र धारण करनेवाले वैष्णवों के भी कामना पूर्ति करने के लिये हरि ने श्रीहरीदास जी को निर्मान किया। आपके गुण गण अति अनुपम थे, सरनागत जन की रक्षा करने के लिये राजा शिवि के समान; दान देनेमें दधीच के सरिखे; दान देकर सत्यता की टेक न छोड़ने में राजा बलि के सदृश; परम धर्म भगवतभक्ति में प्रहलाद जी के सरिस थे और रीझके सीस तक दे देने में कलियुग में जैसे जगदेव थे उसी प्रकार के थे। श्रीहरीदास जी बीकावत, भक्त पन का बाना धरनेवाले, धर्मधुरंधर, "तूंवर" कुलके दीपक, संतसेवा में नित्य तत्पर रहनेवाले थे (वंशका प्रभाव)।

"बीकावत बानैत भक्त वंश पाण्डव अवतारी। कपि जो बीरा कियो

उठाय सीस अम्बर कइ झारी ॥ पीठ परिक्षित (पारथ) सार का सभा साख सन्तन कही । टेक एक वंसी तनी, जन गोविंद की निबही ॥ "

(७८३) टीका कवित्त । (८४३-७८३ = ६०)

प्रह्लाद आदि भक्त गाए गुण भागवत सब इक ठौर आए देखे " हरिदास " मैं । " रीझि ' जगदेव, ' " सों यों कहिके बखान कियो, जानत न कोऊ सुनो कर्यौ लै प्रकास मैं ॥ रहे एक नटी सक्ति रूप गुण जटी गावै लागै चटपटी मोह पावै मृदु हाँस मैं । राजा रिझवार करै देवे को बिचार, पै न पावै सार काटे सीस " राख्यौ तेरे पास मैं " ॥ ६०५ ॥ (६२९--६०४ = २५)

वार्तिक तिलक ।

श्रीप्रहलाद जी, शिवि, दधीच, वलि, इन भक्तों के गुण श्रीभागवत ग्रंथ में प्रसिद्ध हैं ; उन सबों के गुण इकट्ठे श्री हरिदास जी में देखगये ।

श्रीनाभा स्वामी जी ने रीझ में जगदेवजी के समान बखान किया सो "जगदेव" की रीझ का वृत्तान्त (श्रीप्रियादास जी) कहते हैं कि कोई नहीं जानता, इस्से मैं प्रकाश करता हूं । एक शक्तिरूपिणी नांचनेवाली नटी रूप गुण युक्त बड़ी चटकीली तान गाके मंद मंद हँसी से मोह उत्पन्न करती थी । राजा जगदेवरिझवार, देखके, देनेको विचार करता, परन्तु उसके योग्य कोई द्रव्य नहीं पाया तब नटी से कहा कि " मैंने अपना सीस तुझको दिया, काट ले " । नटीने उत्तर दिया कि " सीस अब मेरा है, अभी मैं आपके ही पास रखती हूं " ।

(७८४) टीका। कवित्त (८४१–७८४ = ५९)

दियौ कर दाहिनो मैं, यासो नहीं जाचौ कहूं, सुनि एक राजा भेद भाव सों बुलाई है। निर्त्त करि गाई रीझि "लेवौ कही;" आई "देहु" ओड़्यौ बायों हाथ; रिस भरिके सुनाई है॥ "इतो अपमान!;" पानि दक्षिन लै दियौ अहो नृप जगदेवजू कों; " "ऐसी कहा पाई है?"। "तासो दसगुणी लीजै, मोकों सो दिखाय दीजै;" "दई नहीं जाय काहू, मो हिये सुहाई है" ॥ ६०५ ॥ (६२९–६०५ = २४)

वार्तिक तिलक।

जब जगदेव ने मस्तक देदिया तब नटी ने कहा कि "मैं ने अपना दाहिना हाथ आपको दिया, अब इस हाथ से किसी से न मांगूगी और न लूंगी।"

यह सुनकर उस नटी को एक राजा भेद भावसे बुलाकर नाच करा और रीझके कुछ देनेलगा। उसने बायां हाथ बढ़ाया। राजा रिसाके कहने लगा कि "बायां हाथ पसार तुम हमारा अपमान करती हो?" उसने उत्तर दिया कि "मैं अपना दाहिना हाथ राजा जगदेवजी को देचुकीहूं, उसके समान वस्तु दूसरा कौन देसकता है?"

राजा कहने लगा कि "उसने क्या दिया? मुझे दिखादो; मैं उस्से दशगुणी वस्तु दूंगा।" नटी बोली कि "उसने मुझे बहुत प्यारी वस्तु दी है सर्वस्व दिया है; वैसा कोई भी नहीं देसकता"।

एक महात्मा ने लिखा है कि वह नटी श्रीकाली जी का अंश अवतार थी।

(७८५) टीका । कवित्त (८४३–७८५ = ५८)

किती समझावै " ल्यावौ " कहै, यहै जक लागी, गई बड़भागी पास " वस्तु मेरी दीजियै " । काटि दियो सीस, तन रहै ईशशक्ति लखौ, ल्याई वकसीस थार ढांपि, देखि लीजियै ॥ खोलिकै दिखायौ, नृप मुरछा गिरायौ तन, धन की न बात अब याकौ कहा कीजियै । मै जु दीनौ हांथ जानि आनि ग्रीव जोरि दई लई वही रीझि पद तान सुनि जीजियै ॥६०६॥ (६२९–६०६ = २३)

" बख़्शिश " = بخشش = पारितोषक ।

वार्तिक तिलक ।

नटी ने बहुत समझाया, पर उस राजा ने बड़ी हठ से कहा कि " वह वस्तु लेही आवो । "

नटी ने जगदेव के पास जाके कहा कि " मेरी वस्तु मुझे दीजिये । " राजा ने अपना सीस काट दिया । नटीने शरीर को बड़े यत्न से रखवा सीसको थाल में धरके ढांक के इस राजा के पास लाकर दिखाके कहा कि " श्रीजगदेव जी की दी हुई वस्तु देखो । " देखते राजा मूर्छित हो गिरपड़ा, कहनेलगा कि " धन तो है नहीं यह तो मस्तक है, यह मैं कैसे देसकताहूं ? " नटी ने कहा कि " ऐसी वस्तु पाकर तब अपना दाहिना हाथ देदिया है " ।

फिर उस नटी की शक्ति देखिये कि माथा लाकर जगदेव जी के गले में जोड़कर वही पद तान गानेलगी, सीस जुड़ गया, वह जी उठा ॥

(७८६) टीका । कवित्त (८४३–७८६ = ५७)

सुनी जगदेव रीति, प्रीति नृपराज सुता पितासो बखानि कही वाही को ले दीजिये । तब तौ बुलाये समझाये बहु भांति खोलि वचन सुनाये " अजू बेटी मेरी लिजिये " ॥ नट्यौ स तवार जब कही " डारौ मारि, " चले मारिवे कों, बोली वह " मारौ मत भीजियै " " दृष्टि सो न देखै " कही " ल्यावौ काटि मूड; " लाए, चाहै सीस आंखिन को, गयौ फिरि, रीझियै ॥ ६०७ ॥ (६२९–६०७ = २२)

वार्त्तिक तिलक ।

रूप और गान पर कौन नहीं रीझता ? जगदेव जी का यह सब वृत्तांत एक बड़े राजा की बेटी ने सुन उसपर प्रीति से आसक्त होकर, अपने पिता से कहा कि " मेरा उसीसे विवाह करदो " ।

(दोहा) विद्या अरु बेली, तिया, ये न गनैं कुल जाति ।
जो इनके नियरे बसैं, ताही को लपटाति " ॥ १ ॥

"प्रीति न जानै जात कुजात। भूख न जानै रूखा भात" ॥

तब वह जो बड़ा राजा था कि जिसके राजके अंतर्गत जगदेव राजा था, सो उसने जगदेव को बुलाकर बहुत प्रकार समझाकर खुलके कहा कि " मेरी बेटी तुम लो " ।

इसने नहीं अंगीकार किया। तब उस राजा ने जगदेव के मार डालने की आज्ञा दी। उसकी बेटी ने कहा कि " मैं उसके प्रेम में डूबी हूं, मारो मत, मेरे सामने लाओ " । लोगों ने कहा कि "तुम्हारी ओर दृष्टि नहीं करेगा;" तब वह दुष्टा

बोली कि "सीस काटके लाओ" जब मस्तक काटकर लाये, राजा की बेटी जगदेव जी के नेत्रों को देखने लगी; तब सीस का मुँह फिर गया । यह बात रीझने योग्य है ॥

(७८७) टीका कवित्त (८४३–७८७=५६)

निष्ठा रिझवार रीति कीनी बिस्तार यह सुनौ साधु सेवा हरीदास जू ने करी है ॥ परदा न संतसौं है देत हैं अनंत सुख रह्यौ रुख जानि भक्त सुता चित धरी है ॥ दोऊ मिलि सोवैं रितु ग्रीषम की छात पर गात पर गात सोये सुधि नहीं परी है । दातुन के करिवे को चढ़े निसि सेस आप चादर उढ़ाय नीचे आए ध्यान हरी है ॥६०८॥ (६२९–६०८ = २१)

वार्त्तिक तिलक ।

यह तो जगदेव-रिझवार-निष्ठा विस्तार से वर्णित हुई । अब जिस प्रकार श्रीहरीदास जी ने साधुसेवा की है सो सुनिये । आपके गृह में साधु मात्र को ओट (परदा) नहीं था, अनेक प्रकार से सेवा कर सुख देते थे । खान पान पाकर एक वेषधारी आपके यहां रहगया, सो हरीदास जी की कन्या से विषयासक्त होगया । एक दिवस ग्रीषम ऋतु में छत पर दोनों एकट्ठे सोतेथे; श्रीहरीदास जी कुछ रात्रि शेषमें प्रभाती (दतुअन) करने के लिये अकस्मात कोठेपर चढ़े; सो दोनों को देख के अपना दुपट्टा ओढ़ाकर, नीचे आ श्रीभगवत का ध्यान करने लगे ॥

(दो०) या भव पारावार को, उलँघि पार को जाय । तिय छबि छाया ग्राहिनी, बीचहि पकरय आय ॥ १ ॥ रसन सिसन संजम करै, प्रभु चरनन तर वास । तबही निश्चै जानिये राम मिलन की आस ॥ २ ॥

(७८८) टीका । कवित्त (८४३ – ७८८ = ५५)

जागि परे दोऊ, अरबरे देखि चादरकों, पेखि पहिचानी सुता पिताही की जानी है। संत दृगनये चले बैठे मग पग लये गये लै एकांतमें यों बिनती बखानी है ॥ "नेकु सावधान ह्वैके कीजिये निसंक काज, दुष्टराज छिद्र पाय कहै कटु बानी है । तुमको जु नाव धरैं जरैं सुनि हियो मेरौ, डरैं निन्दा आपनी न होत सुखदानी है ॥ ६०९॥ (६२९–६०९ = २०)

वार्त्तिक तिलक ।

दोनों जागे और दुपट्टा देख घबड़ा गये; कन्याने पहिचाना कि यह मेरे पिता ही का वस्त्र है, नामका साधु ऊपर से उतर लज्जा से नेत्र नवाये चला; श्रीहरीदास मार्ग में नीचे बैठे थे देखकर, उसके चरणों में प्रणाम कर एकान्तमें लेगये और विनयपूर्वक शिक्षा करने लगे कि "ऐसा कार्य युक्ति सावधानी से किया करिये, निःसंक होकर करनेमें दुष्ट लोग छिद्र देख पाय कटु बानी कहते हैं; आप सब संतों की निन्दा सुन मेरा हृदय जलेगा इससे मैं डरताहूं; सन्तकी निन्दा अपनी ही निन्दा है सो अपनी निन्दा सुख देनेवाली नहीं होती है (वा, "सन्त की निन्दा अप्रिय है मुझे, और मैं अपनी निन्दा से नहीं डरता, वह तो सुखदाई है, निन्दक बपुरा प्राण हमारा")

(७८९) टीका । कवित्त (८४३–७८९ = ५४)

इतनी जतावनी में भक्तिकों कलंक लगै, ऐपै संक वही, साधु घटतीन भाइयै । भई लाज भारी, विषैवास धोय डारी नीके, जीके दुख रासि, चाहे कहूं उठि जाइयै॥ निपट मगन

किये नाना बिधि सुखदिये, दियेपै न जान, "मिलि लालन लड़ाइयै"। गोबिन्द अनुज जाके बांसुरी कौ सांचोपन मन मैं न ल्यायौ नृप इहि बिधि गाइयै ॥ ६१० ॥ (६२९—६१० = १९)

वार्त्तिक तिलक ।

मैंने आपको इतनी बात जो जताई सो मैं उचित नहीं समझता मानो मेरी भक्ति में इतना कलंक सरीखा लगा, पर क्या करूं? साधुकी निन्दा वा घटती मुझे नहीं अच्छी लगती इससे इतना कहा है"। सुनकर उस साधु को बड़ी भारी लज्जा और ग्लानि हुई, सब विषय दुर्गंध को छोड़ मनमें बड़ा दुखी हो, वहां से चले जाने को चाहा; परन्तु आपने बहुत समझा कर उसको अनेक प्रकार का सुख दे रक्खा और कहा कि "मैं और आप मिल जुलकर प्रभुको लाड़ लड़ाएँ।"

श्रीहरीदास जी के छोटे भाई "श्रीगोविन्द" जी थे उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि श्रीकृष्णचन्द्र जी के आगे और संतों के समीप में बहुत उत्तम बांसुरि बजाते थे यह सुन बादशाह ने कहा कि "मुझे बांसुरी सुनादो।" पर आपने किसी प्रकार उसके समीप नहीं बजाया। अपनी टेक नहीं छोड़ी।

इस प्रकार, हमने श्रीहरीदास जी की कथा गान की ॥

"टेक एक बंशी तनी "जन गोबिंद" की निर्बही ॥ युगल चन्द किरपाल तासुको दास कहावै। बादशाह सों पैंज हुकुम नहिं बेणु बजावै ॥ &c., &c.,

(७८१) पृष्ठ १२६२ मूल १७८ में, कोई महात्मा बताते हैं कि १काह, २ श्रीरंग, ३ सदानन्द, ४ श्यामदास ५ मारू, ६ मुदित, ७ कल्यान, ८ परस, ९ बंसी, १० नारायण, ११ चेता, १२ ग्वाल गोपाल, १३ शंकर, ये सब (तेरहो) नाम भक्तोंहीं के हैं। और किसी ने 'लघुलम्ब' के स्थान में पाठान्तर " लघुबंश " बताया है और " नीच कुल में उत्पन्न श्यामदास " यह अर्थ उसके किये हैं ॥

(७८२) पृष्ठ १२६३ मूल १७९ में, " बीकावती रानी " के समान श्रीहरीदास जी का बाना, भक्ति में था। सब संसार में इन्होंने यश लिया।

श्रीअर्जुन जी के पुत्र श्रीअभिमन्यु जी, उनके श्रीपरीक्षित जी, सो परीक्षित जी की पीढ़ी (बंश) में, श्रीहरीदास जी थे, तो आप में ऐसे गुण रहे तो कोई अश्चर्य्य नहीं ॥ कोई महाशय ऐसा अर्थ भी करते हैं कि " यदि इन्हें श्रीअर्जुन जी के समान कहें तो इसमें आश्चर्य्य की बात क्या है। "

☛ ज़िला मिर्ज़ा पूर " चनार " के पण्डित श्रीभान्डप्रताप तिवारी जी, जिन्हों ने श्रीकबीर जी की साखी, तथा श्री गोस्वामी जी के बिनय पत्रिका को इङ्गरेजी में उल्था किया है, इन महाशय से भी मुझे समय समय पर सहायता मिली है। इसके लिये इन महाशय को मेरे अनेक धन्यवाद हैं ॥

(२५१) श्रीकृष्णदास जी।

(७९०) मूल। छप्पै (८४३–७९० = ५३)

नन्द कुंवर " कृष्णदास " को निज पग तें नूपुर दियो॥ तान मान सुर ताल सुलय सुंदरि सुठि सोहै। सुधा अंगभ्रू भंग गान उपमा को को है ॥ रत्नाकर संगीत, राग माला, रँगरासी । रिझए

राधा लाल भक्त पद रेनु उपासी ॥ स्वर्ण कार "खरगू" सुवन भक्त भजन पद दृढ लियौ। नन्द कुवर "कृष्णदास" कों निज पग तें नूपुर दियौ ॥ १८० ॥ (२१४–१८० = ३४)

वार्तिक तिलक।

श्रीकृष्णदास जी को नृत्य करते समय में श्रीनन्दकुमार जी ने अपने चरणों से नूपुर (घुँघुरू) निकालके पहना दिया। आप नृत्य भेद और गान में बड़े प्रवीन थे। पद तान का प्रमान स्वर ताल अच्छी लय ये सब आपके गान नृत्य में अंग सुन्दर शोभते थे। सुधा भ्रू भंग आदिक व्यंजक अभिनय और गान अनुपम था। संगीत रत्नाकर और रागमाला, रंगरासि आदि में जो गान नृत्य के भेद लिखे हैं सो सब आप जानते थे। इन गुणों से श्रीराधालाल जी को प्रसन्न कर लिया। श्रीहरिभक्तों के चरण रेणु के उपासक स्वर्णकार (सोनार) " श्रीखड्गू जी " के पुत्र (कृष्णदास जी) ने भगवद्भक्तों के भजन का पद दृढ़ कर ग्रहण किया ॥

जिनको गाना भले प्रकार आता है, जिनका स्वर अति मधुर है, जिनको प्रेम के पद बहुत कण्ठस्थ हैं वा स्वयं रच सकते हैं, और गाने के समय जो रस का अनुभव करते हैं, उन बड़भागियों की प्रशंसा किससे हो सकती है ॥

(७९१) टीका। कवित्त (८४३–७९१ = ५२)

कृष्णदास ए सुनार राधाकृष्ण सुखसार, लियौ सेवा करि पाछे नृत्य बिसतारियै। ठेहे करि मगन काहू दिन तन सुधि भूली, एक पग नूपुर सो गिर्यौ न सँभारियै॥ लाल

अति रंग भरे जानी जति भंग भई पाय निज खोलि आय बांध्यो सुख भारिये। फेरि सुधि आई देखि धारा लै बहाई नैन कीरति यों छाई जग भक्ति लागी प्यारियै॥ ६११॥
(६२९–६११ = १८)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकृष्णदास जी सोनार ने श्रीराधाकृष्ण जी की भक्ति का सुखसार लिया। पहिले सप्रेम सेवा पूजा करते, पीछे प्रभु के आगे नृत्य विस्तार करते थे।

एक दिन नाचते समय आनन्द में मग्न हो शरीर की सुधि भूल गए। एक चरण का नूपुर गिर गया। उसको आपने सुधारा नहीं। श्रीनन्दलाल जी ने नृत्य देख रंग में भरे जाना कि नृत्य की जति गति भंग हुवा चाहती है; इससे अपने चरण का नूपुर खोल कृष्णदास के पग में बांध अति सुख पाया। फिर पीछे जब देह की सुधि हुई तब देखें तो अपना नूपुर भूमि में पड़ा है और प्रभु का नूपुर अपने पग में।

प्रभु की कृपालुता को समझ नेत्रों से प्रेम जल की धारा बहने लगी। इस प्रकार आपकी कीर्ति जग में छागई, और भक्ति सब को प्रिय लगी॥

(७९२) मूल। छप्पै (८४३–७९२ = ५१)

परम धर्म प्रति पोषकौं संन्यासी ए मुकुट मनि॥ चितसुखै टीकाकार भक्ति सर्वोपर राखी। श्रीदामोदरतीर्थ राम अर्चन बिधि भाषी॥

चंद्रोदय हरि भक्ति नरसिंघारनं कीनी । माधौ, मधुसूदन स्वरस्वती, परमहंस कीरति लीनी ॥ प्रबोधानंद, रामभद्र, जगदानंद, कलिजुग्ग धनि । परमधर्म प्रति पोषकौं संन्यासी ए मुकुट मनि ॥ १८१ ॥ (२१४-१८१ = ३३)

वार्तिक तिलक ।

परमधर्म अर्थात् श्रीभगवतभक्ति को अपने २ ग्रंथ द्वारा परम पुष्ट करने वाले ये संन्यासी सब संन्यासियों के मुकुटमणि के समान हरिभक्त हुये ।

(१) चितसुखानन्द सरस्वती ने गीता आदिक की चितसुखी टीका में श्रीभक्ति ही को सर्वोपर वर्णन किया है ।

(२) श्रीदामोदरतीर्थ जी ने श्रीरामार्चन चंद्रिका में श्रीराम पूजन विधि भक्तिपूर्वक वर्णन किये हैं । देखने योग्य ।

(३) नृसिंहारण्य जी ने श्रीहरि भक्ति चंद्रोदय ग्रंथ सप्रेम निर्मान किया ।

(४।५) मधु सूदन सरस्वती जी ने भक्ति रसायन आदिक ग्रंथ बनाये । ऐसेही माधवानन्द सरस्वतीजी हुये । इन्होंने परमहंस कीर्ति का लाभ लिया ।

(६) श्रीप्रबोधानन्द जी ।(७)श्रीरामभद्र सरस्वती जी ।

(८) श्रीजगदानन्द जी श्रीहरिभक्तिप्रतिपोष करने वाले कलियुग में धन्यतर हुये ॥

(२५२) श्रीप्रबोधानंदसरस्वतीजी ।

(७९३) टीका । कवित्त (८४३-७९३=५०)

श्रीप्रबोधानंद, बड़े रसिक आनन्दकन्द, श्री "चैतन्यचन्द" जू के पारखद प्यारे हैं । राधाकृष्ण कुंजकेलि, निपट नवेलि कही, झेलि रसरूप, दोऊ किए दृग तारे हैं ॥ वृन्दावन बास को हुलास लै प्रकाश कियौ, दियौ सुखसिंधु, कर्म धर्म सब टारे हैं । ताही सुनि सुनि कोटि कोटि जन रंग पायो, विपिन सुहायो, बसे तन मन वारे हैं ॥ ६१३ ॥ (६२९-६१२=१७)

वार्तिक तिलक ।

श्रीप्रबोधानन्द जी बड़े ही रसिक, आनन्दकन्द श्रीकृष्ण चैतन्य जी के प्रिय पारषद थे । श्रीराधाकृष्ण कुंजकेलि अति नवीन वर्णन किया और रूप रस को पान कर युगल चन्द को अपने नेत्रों के तारे कर लिये । आपने अपने काव्यमें श्रीवृन्दावन बास के उल्लाश का प्रकाश कर उपासकों को सुख सिंधु में मग्न किया । और कर्म धर्म को न्यारे करदिया । उस ग्रंथको सुन २ के करोड़ों लोगोंने प्रेम रंग को पाया । आपने स्वयम सुन्दर श्रीवृन्दावनमें बसके तन मन धन सब नेवछावर करदिये ॥

(२५३) श्रीद्वारकादास जी ।

(७९४) मूल । छप्पै (८४३-४७४=४९)

अष्टांग जोग तन त्यागियौ, "द्वारिकादास" जानै दुनी ॥ सरिता "कूकस" गाँव सलिल में ध्यान

धन्यौ मन। राम चरण अनुराग सु दृढ़ जोके साचौ पन॥ सुत कलत्र धन धाम ताहि मो सदा उदासी। कठिन मोहको फन्द तरकि तोरी कुल फांसी॥ "कील्ह" कृपा बल भजनके, ज्ञान खड्ग माया हनी। अष्टांग जोग तन त्यागियो, द्वारिकादास जानै दुनी॥ १८२॥ (२१४-१८२=३२)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीद्वारिकादास जी, क्रमसे यम[१], नियम[२], आसन[३], प्राणायाम[४], प्रत्याहार[५], धारणा[६], ध्यान[७], इन सातो अंगों को साधके, आठवें अंग समाधि में स्थित होकर, ब्रह्मरंध्र फोड़, तन त्याग के, श्रीराम धाम को प्राप्त हुये, यह सब संसार जानता है।

कूकस ग्रामके निकट, नदी के जल में स्थित हो, मनमें ध्यान धरा। आपके प्रेमभक्ति का पण सच्चा था इससे श्रीरामचन्द्रचरणोंमें अतिशय दृढ़ अनुराग कर, स्त्री पुत्र धन धाम आदिकों से सदा उदासीन हो, कठिन मोह जाल की सब फांसियां तोड़ दीं। अपने गुरु स्वामी श्रीकील्हदेव जी की कृपादत्त भजन के बल से, ज्ञानखड्ग ले, अविद्या माया को नाश कर, अष्टांग योग से तन त्याग, श्रीराम धाम में जा बसे॥

(२५४) श्रीपूर्ण जी।

(७९५) टीका। कवित्त (८४३-७९५=४८)

पूरन प्रगट महिमा अनंत, करिहै कौन ब-

खान ॥ उदै अस्त परवत गहिर मधि * सरिता भारी। जोग जुगति बिस्वास, तहां दृढ़ आसन धारी॥ व्याघ्र सिंघ गुंजैं खरा कछु संक न मानै। अर्द्ध न जातैं पौंन उलटि ऊरध कौं आनै॥ साखि शब्द निर्मल कहा कथिया पद निर्वान। पूरन प्रगट महिमा अनंत करिहै कौन बखान॥ १८३॥ (२१४-१८३ = ३१)

(* अर्थात् श्रीगंगा जी)

वार्तिक तिलक।

श्रीपूर्णदास जी की अनंत महिमा प्रगट हुई उसको कौन बखान सकेगा। उदयाचल और अस्ताचल के मध्य में जितनी नदिया हैं उन सबों में अति गहिरी सरिता श्रीगंगा जी के निकट, हिमाचल में, आप जोग युक्ति से भगवत के विश्वास पूर्वक दृढ़ आसन धारण कर, ध्यान समाधी लगा, समीप में व्याघ्र सिंह खड़े हुये गर्जते थे, अपने अपान वायु को प्राण में मिलाकर उर्ध्वही को ले जाते, नीचे नहीं जाने पाता। आपने साखी, शब्द, निर्मल कहकर निर्वान पद मोक्ष का उपाय वर्णन किया। निश्चय होता है कि ये पूर्ण जी वही हैं कि जिन "पूर्ण विराटी जी" का 'द्वारा' है॥

(२५५) श्रीलक्ष्मण भट्ट जी।

(७९६) मूल। छप्पै (८४३-७९६ = ४७)

श्रीरामानुज पद्धति प्रताप, "भट्ट लक्षमन"

अनुसऱ्यौ ॥ सदाचार मुनि वृत्ति भजन भागौत उजागर। भक्तनि सों अति प्रीति भक्ति दसधा कौ आगर॥ संतोषी सुठि सील हृदे स्वारथ नहिं लेसी॥ परम धर्म प्रतिपाल संत मारग उपदेसी॥ श्रीभागौत बखान कै, नीर क्षीर बिबरन कऱ्यौ। श्रीरामानुज पद्धति प्रताप, भट्ट लक्षमन अनुसऱ्यौ ॥ १८४ ॥ (२१४–१८४ = ३०)

वार्तिक तिलक।

अनन्तश्रीरामानुज स्वामी जी की पद्धिति (संप्रदाय) के प्रतापसे श्रीलक्ष्मण भट्ट जी शरणागति भक्ति मार्ग में यथार्थ प्रवृत्त थे। सदाचार तथा मुनि वृत्ति से, भजन करने वाले उत्तम भागवत हुये। और भगवत भक्तों से अति प्रीत करते, दशधा (प्रेमा) भक्ति के स्थान ही थे। अति संतोषी, परम सुशील, स्वार्थ रहित परम धर्म प्रति पालक, संत मार्ग के उपदेश करने वाले थे। श्रीभागवत की कथा कहकर नीर रूपी मायिक पदार्थ और क्षीर रूपी परमार्थ वस्तु दोनों का बिवरण करके पृथक् २ दिखा देते थे। ऐसे विराग ज्ञान भक्ति के धाम आप थे॥

(२५६) स्वामी श्रीकृष्णदास पैहारी जी।

(७९७) मूल। छंद कुंडलिया (८४३–७९७ = ४६)

"गलतें" गलित अमित्त गुण, सदाचार सुठि नीति। "दधीच" पाछे दूसरी करी "कृष्णदास"

कलि जीति ॥ कृष्णदास कलि जीति न्यौति नाहर पल दीयौ। अतिथि धर्म प्रतिपाल प्रगट जस जग में लीयौ॥ उदासीनता की अवधि कनक कामिनि नहिं रातो। राम चरण मकरंद रहत निस दिन मद मातो ॥ १८५ ॥ (२१४-१८५ = २९)

वार्तिक तिलक।

जैसे दधीचि ऋषि जी ने देवताओं के मांगने से अपना शरीर देदिया, ऐसे ही दधीच गोत्र में उत्पन्न श्रीस्वामी कृष्णदास पयोहारी जी ने कलिकाल को जीत दधीच की नाईं दूसरी बात की। एक समय आपके गुफा के सामने बाघ आया तो आपने उसको अतिथि जान नेवता कर अतिथिधर्म प्रतिपाल पूर्वक अपना पल (मांस) काटके दिया। इस प्रकार के प्रसिद्ध यश को आप जग में प्राप्त हुये।

उदासीनता (वैराग्य) की मर्यादा हुये। और इस संसार सागर में जो कनक कामिनी रूप दो भँवर सब को डुबा देने वाले हैं उन दोनों के रंगसे आप नहीं रँगे। केवल श्रीराम चरण कमल के अनुराग रूपी मकरंद से भ्रमर की नाईं मदमत्त आनन्दित रहते थे। संतों के अमित दिव्य गुणों से गलित अर्थात् परिपक्व, सदाचार, अति नीति युक्त, "गलते" गादी में विराजमान हुये ॥

(७९८) टीका। कबित्त (८४३-७९८ = ४५)

बैठे हे गुफा में, देखि सिंघ द्वार आय गयौ, लयौ यों बिचारि "हो अतिथि आज आयो है"। दई जांघ काटि

डारि, " कीजिये अहार अजू " महिमा अपार धर्म कठिन बतायो है ॥ दियो दरसन आय, सांच मैं रह्यौ न जाय, निपट सचाई, दुख जान्यौ न, बिलायो है । अन्न जल देवे ही कों झीखत जगत नर, करि कौन सकै जन मन भरमायो है ॥ ६१३ ॥ (६२९–६१३ = १६)

वार्तिक तिलक ।

एक समय स्वामी श्री ६ कृष्णदास जी गलता की गुफा में बैठे थे देखें तो एक व्याघ्र आकर खड़ा है। आपने विचार किया कि " यह कभी यहां नहीं आया इससे हमारा अतिथि है इसको भोजन देना चाहिये, " अपनी जंघाओं का मांस काटकर उसके आगे डाल दिया और कहा कि " इसका आहार करो " । देखिये आपकी अपार महिमा, हिंसक अतिथि को भी भोजन देना बताया अर्थात् अपनी करनी से उपदेस दिया । वह मांस खाकर व्याघ्र चला गया। श्री ६ कृष्णदास जी की यह धर्म पालन रूप अतिशय सचाई देख परम धर्म धुरंधर श्रीराम जी से नहीं रहा गया; कोटि काम अभिरूप से आकर दरशन दिये और मस्तक पर कमल कर धर सब दुःख दूर कर दिये। जंघा भी ज्यों की त्यों होगई। श्री १०८ पयहारी जी नयनानन्द पाकर कृतार्थ हुये ।

देखिये लोग अतिथि को अन्न जल देने में झँखते हैं आपके समान कर्म कौन कर सक्ता है इस बात को मनमें विचार करने से ही जीव घबड़ा जाते हैं सो कर कैसे सकैं ?

(२५७) श्रीगदाधरदास जी।

(७९९) मूल। छप्पै (८४३-७९९=४४)

भली भांति निवही भगति सदा "गदाधर-दास" की॥ लालबिहारी जपत रहत निसिबासर फूल्यो। सेवा सहज सनेह सदा आनँद रस झूल्यो॥ भक्तनि सों अति प्रीति रीति सबही मन भाई। आसय अधिक उदार रमन हरि कीरति गाई॥ हरि विस्वास हिय आनिकै, सुपनेहुं आन न आसकी। भली भांति निबही भगति सदा "ग-दाधरदास" की॥ १८६॥ (२१४-१८६=२८)

वार्तिक तिलक।

श्रीगदाधरदास जी की भक्ति, आदि से अन्त तक सदा एकरस भले प्रकार से निबह गई। प्रफुल्लित मन से दिन रात श्री "लालबिहारी" जी का नाम जपते रहते थे, और प्रभु की सेवा सहज स्नेह से किया करते। सदा आनन्द के रस से झूलते भगवत भक्तों से अति प्रीति रखते थे।

आप की रीति सब के मन में भाती थी और अन्तःकरण का आशय अतिशय उदार रहा। रसना से हरि कीर्ति गाते, हृदय में श्रीहरि का विश्वास लाते; किसी और की आशा आपने स्वप्ने में भी नहीं की॥

(८००) टीका। कबित्त (८४३-८००=४३)

बुरहानपुर ढिग बाग तामें बैठे आय करि अनुराग एक

त्याग पागे स्याम सों। गांव मैं न जात, लोग किते हाहा खात, सुख मानि लियौ गात, नहीं काम और काम सों॥ पऱ्यो अति मेह, देह वमन भिजाय डारे, तब हरि प्यारे बोले सुर अभिराम सों। रहै एक साह भक्त कही जाय ल्यावौ उन्हैं मंदिर करावौ तेरो भऱ्यौ घर दाम सों॥ ६१६॥ (६२९–६१४ = १५)

वार्तिक तिलक।

श्रीगदाधरदास जी वैराग्य से गृह को त्याग के श्रीश्यामसुन्दर के प्रेम में पगे "बुरहानपुर" के निकट आकर बिराजे। लोग बहुत प्रार्थना करते, परन्तु आप ग्राम में नहीं जाते थे आपके मन और शरीर ने यहां ही सुख मान लिया। आप और कामों से प्रयोजन नहीं रखते थे।

एक दिन मेघों ने जल की बड़ी बरषा की आप के सब वस्त्र भींग गये, भक्त का दुःख देख भगवान को बड़ी दया लगी, तब एक भक्त सेठ को स्वप्न में अति अभिराम स्वर से आज्ञा दी कि तेरे घर में बहुत द्रव्य भरा है इससे जा मेरे प्रिय भक्त गदाधरदास को लिवा ला सुन्दर मंदिर बनवा दे। तेरे घर में श्रीलक्ष्मी जी की कृपा बनी रहैगी॥

(८०१) टीका। कवित्त (८४३–८०१ = ४२)

नीठ नीठ ल्याए हरि बचन सुनाए जब, तब करवायौ ऊंचौ मंदिर सँवारिकै। प्रभु पधराये, नाम "लाल" औ "बिहारी" स्याम अति अभिराम रूप रहत निहारिकै॥ करैं साधुसेवा जामें निपट प्रसन्न होत, बासी न रहत अन्न

सावै पात्र झारिकै। करत रसोई जोई राखी ही छिपाय सा-
मा आए घर संत, आप कही "ज्यांवो प्यारिकै ॥ ६१५ ॥
(६२९-६१५ = १४)

वार्तिक तिलक।

वैश्य भक्त ने प्रभु की आज्ञा मान आपके पास आकर ग्राममें चलने की प्रार्थना की। नहीं अंगीकार किया; तब श्रीहरि के बचन सुनाए; बड़ी कठिनता से लिवालाये, और सुन्दर बिचित्र ऊंचा मन्दिर बनवाके प्रभु को पधराया। ठाकुर जी का नाम "श्रीलालबिहारी" जी रक्खा। अति सुन्दर श्याम स्वरूप को देखते प्रेम में मग्न होजाते थे।

सन्तों की सेवा ऐसी करते कि जिसमें साधु अति प्रसन्न होते थे; अन्न आदिक जो आता, सो दूसरे दिनको नहीं रहता, अन्न के पात्रों को (अशेष) झार करके सोते थे। परन्तु रसोई करने वाले कुछ सामग्री भगवत के भोग के लिये छिपा रखते थे। एक समय रात में संत आये; श्रीगदाधरदास जी ने रसोइयों पुजारियोंसे कहा कि "जो कुछ सामग्री होय सो प्रीतिपूर्वक बनाके भोजन करावो"॥

(८०२) टीका। कवित्त (८४३-८०२ = ४१)

बोल्यो प्रभु भूखे रहैं ताके लिये राख्यो कछू भाख्यो तब आप काढ़ो भोर और आवैगो। करि के प्रसाद दियो लियो सुख पायो सब सेवा रीति देखि कही जग जस गा-वैगो ॥ प्रात भये भूखे हरि गए तीन जाम ढरि रहे क्रोध भरि कहै कबधों छुटावैगो। आयो कोऊ ताही समै दो सत

रुपैया धरे बोले गुरु " सीस लै के मारो " कितौ पावैगौ ॥ ६१८ ॥ (६२९–६१६ = १३)

वार्तिक तिलक।

आप के बचन सुन शिष्य बोला कि "ठाकुर जी भूखे रह जाते हैं इसलिये थोड़ासा अन्न रख छोड़ा है।" आपने कहा " वही निकाल के सन्तों को पवावो, प्रातःकाल और आवेगा।" शिष्यने रसोई कर भोग लगा के सन्तों को दिया; सन्त प्रसाद पाकर सुखी हुये; श्रीगदाधरदास जी की सेवा रीति देख कहने लगे कि " आपका यश सब जगत गावेगा।"

प्रातःकाल कुछ आया नहीं; प्रभु भूखे ही रह गये! तीन पहर बीत गये!! तब आपके शिष्य क्रोध कर कहने लगे कि " देखो, अब तक भोग नहीं लगा, हम लोग भूखे मरते हैं, न जानें इस दुःख को ब्रह्मा कब छुड़ावैगा?" उसी समय कोई भक्त आकर श्रीगदाधरदास जी के सामने दो सौ रूपये पूजा रक्खी। आप बोल उठे कि " ये रुपये लेकर इसके माथे में मारो, जितनी इच्छा हो उतना पावै, भूखसे व्याकुल हो रहा है " ॥

(८०३) टीका। कवित्त (८४३–८०३ = ४०)

डर्‍यौ वह साह, " मत मोपै कछु कोप कियौ?" कियौ समाधान सब बात समझाई है। तब तौ प्रसन्न भयौ अन्न लगै जितौ देत, सेवा सुख लेत, साधु रुचि उपजाई है ॥ रहे कोऊ दिन, पुनि मधुपुरी बास लियौ, पियौ ब्रज रस

लीला अति सुखदाई है ॥ लाल लै लडाए, संतनीके भुगताए, गुन जाने जिते, गाये, मति सुन्दर लगाई है ॥ ६१७॥ (६२९--६१७=१२)

वार्तिक तिलक ।

आपके बचन सुन वह भक्त सेठ डरगया कि "स्वामीजी ने कुछ मुझ पर तो क्रोध नहीं किया"। तब श्री गदाधर दास जी ने सब बात समझा कर उस भक्त का समाधान किया। वृत्तान्त सुन सेठ प्रसन्न हुआ; और जितना अन्न लगता उतना देने लगा। उत्तम रुचि से साधु सेवा का सुख लेने लगा।

आप कुछ दिन वहां रहकर फिर श्रीमथुरा पुरी में आकर बसे। अति सुखदाई ब्रज लीला रस को पान किया; इस प्रकार आपने श्रीलाल जी को लाड़ लड़ाया और भले प्रकार संत सेवा का सुख लिया। "हम आपके जितने गुण (यश) जानते थे उतने सुन्दर मति लगाके गान किये।"

दो गदाधर जी श्रीकृष्ण चैतन्यमहाप्रभु के चौंसठ महन्तों में थे। एक गदाधरदास श्री ६ कृष्णदास पैहारीजी के शिष्य थे। एक गदाधरजी बांदावाले, और एक गदाधर जी श्रीवल्लभाचार्य जी के शिष्यों में थे ॥ श्रीगदाधर वाणी बड़ी उत्कृष्ट कविता हुई।

(२५८) श्रीनारायणदासजी।

(८०४) मूल। छप्पै (८४३-८०४=३९)

हरि भजन सींव स्वामी सरस, श्रीनारायण

दास अति ॥ भक्ति जोग जुत, सुदृढ़ देह, निज बल करि राखी । हिये सरूपानन्द, लाल जस रसना भाखी ॥ परिचै प्रचुर प्रताप जानमनि रहस सहायक । श्रीनारायण प्रगट मनौ लोगनि सुखदायक ॥ नित सेवत संतनि सहित दाता उत्तर देसगति । हरि भजन सींव स्वामी सरस, श्रीनारायण दास अति ॥१८७॥ (२१४-१८७=२७)

वार्तिकतिलक ।

अति सरस मतिवाले श्रीहरि भजन की सींमा स्वामी श्रीनारायणदास जी हुये । अतिशय दृढ़ भक्ति योग से युक्त अपने देहको वीर्य बल के सहित कर रक्खा, और स्वरूपानन्द में मन मग्न किया । जीभ से श्रीलाल जी के नाम यश कहा करते थे । अपने विख्यात प्रताप से परिचय भी दिया; ज्ञानियों में शिरोमणि भगवत रहस्य के सहायक थे। आपकी बड़ाई कहां तक की जाय लोगों को सुख देने के लिये माना साक्षात् श्रीनारायण स्वयं प्रगट हुये । हित सहित नित्य संतोंकी सेवा करते, उत्तर बदरिकाश्रम देशके जीवों को गति देनेवाले हुये ।

श्रीनायण भट्ट जी, (जिनकी कथा मूल८७ कवित्त ३५६ पृष्ठ ८६०।८६१ में कह आए हैं,)"भट्ट नारायन अति सरस, ब्रजमण्डल सों हेत, ठौर ठौर रचना करा, प्रगट कियो संकेत ॥ " सो भास्कर जी के पुत्र, श्रीसनातन गोस्वामी के शिष्य थे । बताते हैं कि उनका जन्म सम्वत १६२० (१५६३ ई०) में हुआ था । Dr. Grierson ने भी १५६३ ई० लिखीहै । सं० ११८८ में आपका जन्म

किसीने भूलसे लिखा है। "आपका "ब्रजभक्ति विलास" नामक ग्रन्थ श्रीराधाकृष्ण दास के मतानुसार १५५३ इसवी में बना॥ एक श्रीनारायणदास की कथा मूल १४६ कवित्त ५६१।५६२ में कही है। और एक नारायणदास जी इस (मूल १८७) में वर्णित हैं॥ इत्यादि। इत्यादि॥" श्रीतपस्वीराम जी सीतारामीय।

(८०५) टीका। कवित्त (८४३-८०५=३८)

आये बद्रीनाथजू तें, मथुरा निहारि नैन, चैन भयौ, रहैं जहां केसौजू कौ द्वार है। आवैं दरसनी लोग जूतिन कौ सोग हिये, रूपकौ न भोग होत कियौ यों बिचार है॥ करैं रखवारि, सुख पावत हैं भारि, कोऊ जानै न प्रभाव, उर भाव सो अपार है। आयो एक दुष्ट पोट पुष्ट सो तौ सीस दई, लई, चले मग ऐसौ धीरज कौ सार है॥ ६१८॥ (६२९-६१८=११)

वार्तिक तिलक।

स्वामी श्रीनारायणदास जी बद्रीनाथ (बद्रिकाश्रम) जी से आकर मथुरा जी को नेत्रों से देख अति आनन्दित हुये, फिर श्रीकेशवदेव जी के द्वार पर रहने लगे। वहांपर दर्शन करनेवाले लोग आते थे, उनके जोड़े (पनही) चुरा ले जानेकी संका मनमें बनी रहती थी। (दोहा) "हरि के मन्दिर जात हैं, हरिदर्शन के आस। लम्बी दँडवत करत, पर, चित्त पनहियन पास"॥ आपने बिचार किया कि "इन सबको दुचितई से प्रभुके रूप दर्शन का सुख नहीं होता"। इस्से आप द्वार पर बैठे जूतियों की रक्षा किया करते थे, गूढ़ और परहितरत सुभाव की बलिहारी। प्रभु-रूप-चिन्तवन से भारी सुख में मग्न रहते थे, अन्तर के

अपार प्रेम भाव का प्रभाव कोई नहीं जानता था।

एक दिन एक दुष्ट आया; ऊपर का वैष्णव वेष आपके नहीं देखा इस्से बड़ी भारी गठरी आपके सीसपर रखवाय के ले चला, आपने कुछ भी न कहा हरि ही की इच्छा समझे ऐसे धैर्य दीनता और ज्ञान का सारांश आप के हृदय में था ॥ बलिहारी और जयजय आपकी ॥

(८०६) टीका । कवित्त (८४३–८०६ = ३७)

कोऊ बड़ो नर, देखि मग पहिचानि लिये, किये परनाम भूमिपरि, भरिनेह कौ । जानिकै प्रभाव, पाँव लीने महादुष्ट हू नै, कष्ट अति पायो, छुट्यो अभिमान देह कौ ॥ बोले आप " चिंता जिनि करौ, तेरो काम होत; " नैन नीर सोत " मुख देखौं नहीं गेहकौ " भयो उपदेस, भक्ति देस उन जान्यो, साधु सक्तिकौ बिसेस, इहां जानौ भाव मेह कौ ॥ ६१९ ॥ (६२९—६१९ = १०)

वार्तिक तिलक ।

मार्ग में, किसी श्रीमान् भक्तनरने देख पहिचान कर पूर्ण स्नेह से भूमि पर साष्टांग प्रणाम किया । तब वह दुष्ट भी आपका प्रभाव जान चरणों में गिरपड़ा; और देह का अभिमान छोड़ ग्लानि से दुखित हो रोने लगा । श्रीनारायणदास जी ने कहा कि "तुम चिंता मत करो, तुम्हारा यह कार्य मेरे शरीर से हुआ सो भला है । "

(दो०) " क्षमा बड़ेन को चाहिये, ओछन के उतपात ।
कहा विष्णु को घटिगयो ? जो भृगु मारि लात !"

आपके ऐसे साधुता के वचन सुन वह नेत्रों में जल भरके प्रार्थना करने लगा कि " मैं अब घर का और घरके लोगों का मुख नहीं देखूंगा ।" तब आपने कृपा कर उसको भक्तिमार्ग का उपदेश देकर कृतार्थ किया । देखिये सन्तों की ऐसी शक्ति है, कि जैसे मेघ दुष्ट और सज्जनों के खेत में समान वर्षा करते हैं, इसी प्रकार सन्त सब ही पर कृपा दृष्टि वृष्टि कर कृतार्थ करते हैं ।

(२५१) श्रीभगवानदास जी ।

(८०७) मूल । छप्पय । (८४३-८०७ = ३६)

भगवानदास श्रीसहित नित, सुहृद सील सज्जन सरस ॥ भजन भाव आरूढ़, गूढ़ गुन वलित ललित जस । श्रोता श्रीभागौत रहसि ग्याता अक्षर रस ॥ मथुरापुरी निवास आस पद संतनि इकचित । श्रीजुत "षोजी" "स्याम" धाम सुखकर अनुचर हित ॥ अति गंभीर सुधीर मति, हुलसत मन जाके दरस । भगवानदास श्रीसहित नित हृदै सील सज्जन सरस ॥ १८८ ॥ (२१४-१८८ = २६)

वार्तिक तिलक ।

श्रीभगवानदास जी नित्य ही भक्तिश्री के सहित, सर्व भूतों के सुहृद, शीलवान, सरस हृदय युक्त, अति सज्जन

हुये। श्री भगवत भजन भावना में आरूढ़, प्रभु के गूढ़ गुण और ललित यश से आच्छादित अन्तःकरण वाले थे। श्रीभागवत कथा के रहस्य के और अक्षरों के रसके जाननेवाले श्रोता थे। मथुरा पुरी में वसते, और सन्तों के पद की अनन्य आशा चित्त में रखते थे। श्रीयुत खोजीजी तथा श्री स्यामदास जी के गृह के सुखकारी हितकारी सेवक शिष्य थे। अति गंभीर, सुन्दर धीर मति युक्त थे, और अपने दर्शन से सब जनों के मनमें प्रेमानन्द का उल्लास करदेतथे।

(८०८) टीका। कबित्त (८४३–८०८ = ३५)

जानिबेकों पन, पृथीपति मन आई, यों दुहाई लै दिवाई, "माला तिलक न धारिये"। मानि आनि प्रान लोभ, केतिकनि त्याग दिये; छिए, नहीं जात, जानि वेगि मारि डारिये॥ भगवानदास उर भक्ति सुख रास भऱ्यो, कऱ्यो लै सुदेस बेस; रीति लागी प्यारियै। रीझ्यौ नृप देखि, रीझि, मथुरा निवास पायौ, मंदिर करायौ, "हरिदेव" सों निहारियै॥६२०
(६२९—६२० = ९)

वार्तिक तिलक।

एक समय पृथ्वीपति (बादशाह) के मनमें यह आया कि "बहुतसे लोग माला और तिलक धारण किये रहते हैं, देखूं तो कि इनमें सच्ची प्रीति और निष्ठा किसकी है?" इसलिये मथुरा में डौंड़ी (मुनादी) फिरवा दी कि "जो कोई माला तिलक धारण करेगा वह मारडाला जायगा"। उसकी आज्ञा मान अपने प्राण के लोभसे बहुत लोगोंने माला

तिलक तजदिये। बहुत से लोग गृह में छिपे रहे, क्योंकि जानते थे कि जो पृथ्वीपति जानेगा तो शीघ्र मारडालेगा।

परन्तु श्रीभगवानदास जी के हृदय में तो भक्तिसुख का सिन्धु भरा था, इस्से सुन्दर दीर्घ द्वादस तिलक और बहुत सी तुलसी की माला धारण कर पृथ्वीपति के समीप गये। देखके हृदय में प्रसन्न हो, ऊपर से रुष्ट होकर उसने पूछा कि "तुमने मेरी आज्ञा क्यों नहीं मानी ?" आपने अशंक उत्तर दिया कि "हमारे मत में सिद्धान्त है कि "जो माला तिलक धारण कर प्राण त्याग करता है, वह अवश्य भगवान के धाम को जाता है,। इस लाभके लिये आपकी आज्ञा को धन्य माना"। आपकी सच्ची निष्ठा देख नृपति ने पूछा कहा कि "जो इच्छा हो सो मांगो"। आपने कहा कि "मैं जीवनावधि मथुरा निवास चाहता हूं"। उसने लिख दिया कि "मथुरा की अध्यक्षता जबतक जियो तबतक करो।" श्रीभगवानदास जी ने जन्म भर मथुरा वास किया, और गोवर्धनजी के समीप श्रीहरिदेव जी का मन्दिर बनवाया सो अबतक विराजमान हैं, दर्शन करिये॥

(२६०) श्रीकल्याणसिंह जी।

(८०९) मूल। छप्पै (८४३-८०९=३४)

भक्त पक्ष, उदारता, यह निबही "कल्यान" की॥ जगन्नाथ को दास निपुन, अति प्रभु मन भायो। परम पारषद समुझि जानि प्रिय निकट बुलायो॥ प्रान पयानो करत, नेह रघुपति सों

जान्यौ । सुत दारा धन धाम मोह, तिनुका ज्यों तोन्यौ । कौंधनी ध्यान उरमै लस्यौ, "राम" नाम मुख "जानकी" । भक्त पक्ष उदारता, यह निबही कल्यान की ॥ १८९ ॥ (२१४-१८९=२५)

वार्त्तिक तिलक ।

श्री भगवत भक्तों का पक्ष करना और उदारता अर्थात् धन आदिक पदार्थ तथा प्राण तक दूसरे को दे देना, श्री राम कृपासे ये दोनों बातें नोनेरे नगर वाले श्रीकल्यानसिंह जी की, जीवन पर्य्यन्त निबह गईं । आप श्रीजगन्नाथ जी की दासता में अति निपुण थे और श्रीप्रभु के मनमें भाते थे । श्रीजगन्नाथ जी ने अपना परम पार्षद बिचार, प्रिय जान, अपने निकट बुला लिया । अन्त में प्राण त्याग करते समय अपना स्नेह केवल श्रीरघुनन्दन जी से लगाया, और स्त्री पुत्र धन धाम आदिकों का मोह तृण के समान तोड़ डाला । "जरौ सुसम्पति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ । सन्मुख होत जो राम पद, करै न सहज सहाइ" ॥ आप ऐसे बड़ भागी थे कि अंत में श्रीरघुबर जी के कटि कौंधनी (करधनी) का ध्यान हृदय में साक्षात् आगया और मुखसे "श्री जानकी राम" नाम उच्चारण कर प्राण को त्याग के साकेत श्रीराम धाम को प्राप्त हुये ।

श्रीहरि भक्तों के पक्ष करने का एक वृत्तान्त यह है कि एक समय अपने स्थान नोनेरे नगर से अपने भाई अनूप सिंह के सहित उत्सवदर्शनार्थ श्री वृन्दावन को चले जाते थे

मार्ग में देखा कि एक धनी सरावगी दुष्ट एक दीन वैष्णव को दुःख देरहा है। आपने इन वैष्णव साधू का पक्ष कर उस दुष्ट से बचा लिया। तथा धनादिक दे सुखी कर दिया।

श्रीराधाकृष्णदास जी के अनुमान में श्रीरूप गोस्वामी के शिष्य कल्याण दास यही महानुभाव हैं। परन्तु शृङ्गार निष्ठा वाले श्रीकल्यानदास जी और दास्यनिष्ठावाले कल्यानसिंह जी दो जान पड़ते हैं॥

(२६१।२६२) श्रीसंतदासः श्रीमाधोदास।

(८१०) मूल। छप्पै (८४३-८१० = ३३)

सोदर सोभूराम के, सुनो संत, तिनकी कथा॥
"संतदास" सद्वृत्ति जगत छोई करिडार्‍यौ।
महिमा महा प्रवीन भक्तिवित धर्म विचार्‍यौ॥
बहुरयो "माधोदास" भजन बल परचौ दीनौ।
करि जोगिनि सों वाद वमन पावक प्रतिलीनौ॥
परम धर्म विस्तार हित, प्रगट भए नाहिन तथा।
सोदर सोभूराम के सुनो संत तिनकी कथा॥
॥ १९० ॥ (२१४-१९० = २४)

"छोई" = सीठी।

वार्तिक तिलक।

हे सन्त जनो! श्रीसोभूरामजी के दोनों भाइयोंकी कथा सुनिये। श्री सन्तदासजी ने सद्वृत्ति युक्त, जगत को छोई (सीठी) के समान निरस तुच्छ जानके छोड़ दिया. और

भगवत धर्म भक्ति ज्ञान को प्रबीनता से बिचार कर हृदय में धारण किया; इस्से आपकी महा महिमा हुई ।

दूसरे भ्राता श्रीमाधवदास जी ने भजन के बल से ऐसा परचौ दिया कि एक समय एकै कनफटा योगी लोग आप से विवाद करते बोले कि "हम अपने शृं और मुद्रा को अग्नी में डालते हैं, और तुम अपनी कण्ठी माला डालो, देखें कि किसके जलते हैं"। आपने कहा कि "मैं कंठी माला अग्नि मे नहीं डालूंगा, मैं अपना अँचला वस्त्र अग्निमें डालता हूं, तुम अपने पत्थरके मुद्रा, शृंगी को डालो।" ऐसा ही किया, कनफटे के शृंगी, मुद्रा जलगये परन्तु आपका वस्त्र न जला, आपने अग्नि से ज्यों का त्यों वस्त्र ले लिया ।

परम धर्म (भक्ति) के विस्तार के लिये जैसे सोभू राम जी के भ्राता प्रगट हुये वैसा दूसरा नहीं हुआ ।

माधोदास कई हुये हैं–

१ श्रीमाधोदास जिनका वस्त्र अग्नि में नजला
२ श्रीमाधवदास जी जगन्नाथ पुरीय ।
३ श्रीमाधवदास साधुसेइ ।
४ माधवदास गढ़ा के ।
५ माधोदास बरसानेवाले ।
६ माधोदास कपूर खत्री ।
७ माधोदास भगवत रसिक जीके पिता
८ माधवदास दादूजी के शिष्य
९ माधवभट्ट काश्मीरी ।
१० माधोदास (मीरमाधव) काबुली ।
११ माधोदास कायथ सहर नपुर वाले

(२६३) श्रीकान्हरदास जी ।

(८११) मूल । छप्पय । (८४३–८११ = ३२)

बूड़िऐ बिदित, "कन्हर" कृपाल, आत्माराम,

आगम दरसी ॥ कृष्ण भक्ति को थंभ, ब्रह्मकुल परम उजागर। क्षमासील, गंभीर, सर्व लच्छन कौ आगर ॥ सर्वसु हरिजन जानि, हृदै अनुराग प्रकासै। असन, वसन, सनमान करत, अति उज्जल आसै ॥ सोभूराम प्रसाद तें, कृपादृष्टि सब पर बसी॥बूड़िऐ बिदित कन्हर कृपाल आतमाराम आगम दरसी ॥१९१॥ (२१४— १९१ = २३)

वार्तिक तिलक।

बूड़िया ग्राम में श्री कन्हरदास जी जगत विख्यात, परम कृपाल, अपने आत्मा में रमण करने वाले, आगम दर्शी अर्थात् भविष्य जानने वाले हुये। श्री कृष्णभक्ति रूपी गृह के स्तंभ (खंभा) आधार के समान, ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, अति प्रकाशमान, क्षमाशील, गंभीर, सर्व शुभ लक्षणों के स्थान हुये। श्री हरि भक्तों को हृदय में अपना सर्वस्व जान, अतिशय प्रेम करते; खान पान वस्त्रादि देकर अति सनमान करते थे; श्री सोभूराम जी की कृपा प्रसन्नता पाके अति प्रसन्न मन से, सब जीवोंको कृपादृष्टि से देखते थे।

एक श्रीकन्हड़ जी, विट्ठलदास चौबे के पुत्र थे। और ये श्रीकन्हरदास जी ज्ञानी भक्त थे।

(२६४) श्रीगोविन्ददास जी भक्तमाली।

(८१२) मूल। छप्पै (८४३–८१२ = ३१)

भक्त-रतनमाला सुधन, गोविंद कंठ विकास

किय ॥ रुचिर सीलघननील लील रुचि, सुमति सरितपति। बिविधिभक्त अनुरक्त व्यक्त, बहुचरित चतुर अति॥ लघु दीरघ सुर सुद्ध बचन अविरुद्ध उचारन । बिस्ववास बिस्वास दास परिचय बिस्तारन ॥ जानि जगत हित, सब गुननि सु सम, नरायनदास दिय ॥ भक्तरतनमाला सुधन गोविंद कंठ विकास किय ॥ १९२ ॥ (२१४-१९२ = २२)

वार्तिक तिलक ।

श्री भगवद्भक्त रूपी रत्नों की महामूल्य माला (यह भक्तमाल ग्रंथ) श्रीगोविंददास जी के कंठ में विकाशित हुई, अर्थात उनने कंठाग्र किया । आप अति सुन्दर सील-वान, श्रीरामघनश्याम सुन्दर जी की लीला में रुचि वाले सुन्दर मति के सिन्धु ही थे । अनेक भक्तों में अनुराग करने वाले, और उन भक्तोंके यथार्थ स्पष्ट चरित्रों के जानने वाले, अति चतुर थे । श्री भक्तमाल पढ़ते में जहां जैसा लघु दीर्घ अक्षर और स्वर चाहिये वहां वैसेही शुद्ध अविरुद्ध शब्द उच्चारण करते थे । विश्व निवासी भगवान का सदा वि-श्वास करने वाले, संतों के परिचै को अर्थात् जो परीक्षा प्रभाव प्रगट हुये उनको, आप विस्तार पूर्वक कहा करते थे ।

श्रीगोविंददास जी को, सब जगत के जीवों का हित करने वाले और सब शुभ गुणों में(सु = स्व)अपने समान जानके श्री ६ नारायणदास जी ❀ (श्री १०८ नाभास्वामीजी) ने स्वयं

भक्त-रत्नमाला दी। अर्थात् अर्थ आख्यायिका युक्त इस "भक्तमाल" को पढ़ा दिया।

☞ निश्चय होता है कि यह छप्पै भक्तमाल पूर्ण हुये पीछे श्री नाभा स्वामी जी ने लिख दिया है।

और "नारायणदास ने दिया" ऐसा परोक्ष (अन्यपुरुष) नाम लिखा, सो अपना नाम परोक्ष से भी लिखने की कवियों की रीति प्रसिद्ध है ही।

जो मूल १०२ कवित्त ४१० । ४१४ पृष्ठ ९४६ । ९५१ में श्रीगोविन्द स्वामी वर्णित हैं, उनसे ये भिन्न हैं।

(२६५) श्रीनृपमणि जगत सिंहजी।

(८१३) मूल। छप्पै (८४३-८१३=३०)

भक्तेश भक्त भवतोषकर, संत नृपति वासो कुँवर॥ श्रीजुत नृपमनि जगतसिंघ दृढ़ भक्ति परायन। परम प्रीति किये सुवस सील लक्ष्मीनारायन॥ जासु सुजस सहजहीं कुटिल कलि कल्प जु घायक। आज्ञा अटल सुप्रगट, सुभट कटकनि सुखदायक॥ अति ही प्रचंड मारतंड सम, तम खंडन दोरदंड वर। भक्तेश भक्त, भवतोष कर, संत नृपति वासो कुँवर॥ १९३॥ (२१४-१९३=२१)

वार्त्तिक तिलक।

भक्तों के स्वामी, श्रीभगवान के तोष प्रसन्नता करने वाले, "संत राजा आनन्दसिंह" के और "बासोदेई" के कुँवर (पुत्र), नृपशिरोमणि श्रीजगत सिंह जी जगत में परम भक्त हुये।

आप दृढ़ भक्ति में तत्पर थे। परम प्रीति से आपने श्रीलक्ष्मीनारायणजी को स्वभाविक अपने बस कर लिया। जिन भक्तराज जी का सुन्दर यश, सहजही में, कुटिल कलिकाल के, कल्प कहिये सामर्थ्य अर्थात् पाप का घायक (नाशक) था। आपकी आज्ञा अटल अर्थात् कोई मेट नहीं सक्ता था, यह बात प्रगट है। आप ऐसे सुभट थे कि जहां बीर सेनाओं में प्राप्त होते वहां सबको अति युद्धोत्साह सुख देते थे। आप के श्रेष्ठ भुजदंडों का प्रताप अज्ञान और अन्धकार रूपी शत्रुवों के नाश करने के लिये अति प्रचंड मार्तण्ड (सूर्य्य) के समान था।

(८१४) टीका। कवित्त (८४३–८१४ = २९)

जगताकौ पन मन सेवा श्रीनारायन जू, भयौ ऐसौ पारायन, रहै डोला संगही। लरिबेकों चलै आगे, आगै सदा पाछे रहै, ल्यावै जल सीस, ईश भर्यौ हियौ रंगही॥ सुनि जसवंत जयसिंघ कै हुलास भयौ, देख्यौ, दिल्ली मांझ, नीर ल्यावत अभंग ही। भूमि परि, बिनैकरी, "धरी देह तुमहीं नै, जातै पायौ नेह भीजिगए यों प्रसंगही"॥६२१॥ (६२९—६२१ = ८)

वार्तिक तिलक

सन्तनृपति आनन्दसिंहकेबेटे श्रीजगतसिंहजीका श्रीलक्ष्मीनारायण जी की सेवामें बड़ा प्रेमपण और मन ऐसा तत्पर था कि, जो अपने गृह से कहीं जाते थे तो उत्तम पालकी पर विराजमान कर श्रीलक्ष्मीनारायण जी को आगे २ ले चलते

थे और चाकर सरिस आप पीछे पीछे; परन्तु जब युद्ध करने को चलते थे, तब आपही आगे रहा करते थे और प्रभु की पालकी पीछे रहा करती थी। पूजा सेवा की जितनी कृत्य हैं सो सब अपने ही हाथों से करते, यहां तक कि प्रभु के स्नान के लिये जल प्रेमरंग से भरे नित्य अपने माथे पर रखकर लाया करते थे।

एक बेर शाहजहांनाबाद (दिल्ली) में सब राजा एकट्ठे थे, तब आपका। जल लाना सुनके जयपुर के राजा जयसिंह और जसवंतसिंह जी के मन में दर्शन का हुलास हुआ; दोनों जाके मार्ग में बैठे; श्री जगतसिंह जी ब्राह्मण, वैष्णव, सिपाहियों, और सतावधि मनुष्यों के साथ नंगे पांव, सुवर्ण के कलश में जल मस्तक पर लिये, सीताराम नाम जपते चले आते थे, वे दोनों राजा देख प्रेम से भर, भूमिपर पड़, प्रणाम कर, प्रशंसा करने लगे, कि "मनुष्यदेह धरने का फल आपही ने पाया, कि जो आपका श्री प्रभुमें ऐसा प्रेम है।"

(८१५) टीका। कवित्त (८४३-८१५ = २८)

नृपति जैसिंघजू सों बोल्यौ "कहा नेह मेरे? तेरी जो बहिन ताकी गंध को न पाऊं मैं। नाम "दीपकुँवरि" सो बड़ी भक्तिमान जानि, वह रसखानि ऐपै कछुक लड़ाऊं मैं॥ सुनि सुख भयौ भारी, हुती रिस वासों, टारी, लिए गांव काढ़ि फेरि दिये, हरिध्याऊं मैं। लिखि कै पठाई "बाई करें सो करन दीजै, लीजै साधु सेवा करि निसि दिन गांऊ मैं॥ ६२२॥

(६२९-६२२ = ७)

वार्तिक तिलक ।

श्रीजगतसिंह जी सुनके राजा जयसिंह जी से कहने लगे कि "मेरे क्या प्रेम भक्ति है, आपकी बहिन जो 'दीप कुँवरि' नामकी हैं, सो अवश्य बड़ी ही भक्ता हैं, और प्रेम रस की खान ही हैं, उनके प्रेम का गंध भी मैं नहीं पासक्ता; हां, उन्ही की प्रीति रीति देख सुनके संग प्रभाव से मुझे भी प्रभु की ओर कुछ २ प्रेम भक्ति हुई है लाड़ लड़ाता हूं।"

आपके वचन सुन जयसिंह जी को बड़ाही आनन्द हुआ। किसी कारण से "दीपकुँवरि" से अप्रसन्नता होगई थी, सो अपने जी से हटा, कर उनके ग्राम (जागीर) जो ले लिये थे सो सब छोड़ देकर प्रार्थना पत्र लिखकर, अपराध क्षमा कराकर, प्रसन्न किया। और, अपने प्रधान मंत्रियों को लिख भेजा कि "बाईजी (बहिन) जो पूजा भजन दान साधु सेवा आदिक करें, सो भले प्रकार करने देना; धनादिक जो लगे सो देना; मैं उनकी कृपा से श्रीहरि के ध्यान में लगूंगा। और भगवत यश गान करूंगा" ॥

(२६६) श्रीगिरिधरग्वाल जी ।

(८२६) मूल । छप्पै (८४३–८१६=२७)

गिरिधरन ग्वाल, गोपालकौ सखा सांच लौ संगकौ ॥ प्रेमीभक्त, प्रसिद्ध गान, अति गद गद बानी । अंतर प्रभु सों प्रीति, प्रगट रहै नाहिन

छानी *॥ नृत्य करत आमोद विपिन तन वसन बिसारै। हाटक पट हित दान रीझि ततकाल उतारै॥ "मालपुरै" मंगल करन रास रच्यौ, रसरंग कौ। गिरिधरन ग्वाल गोपाल कौ सखा सांच लौ संग कौ ॥१९४॥ (२१४-१९४=२०)

"छानी"=छन्न=छिपाई, ढांकी। * दो०। "प्रेम छिपाए ना छपै, होही जात प्रकास। दाबे दूबे ना दबै, कस्तूरी की बास" ॥ १ ॥

वार्तिक तिलक।

श्रीगोपालीदेई के पुत्र श्रीगिरिधरग्वाल जी श्रीगोपाल जी के सच्चे संगी सखा थे। प्रसिद्ध प्रेमी भक्त; परम उदार और कवी थे; प्रभुयश गान करते समय में आपकी अति गदगद बानी हो जाती थी। आपके अन्तर हृदयकी प्रीति छिपाने से भी नहीं * छिपती थी; नाम गुण गाते, गुण श्रवण करते, में प्रगट होजाती थी; जब श्रीवृन्दाबन के एकांत बन में प्रेमानन्द से मत्त, गुण गान कर नाचने लगते थे, तब देह के वस्त्र, वो देह का भान, भूल जाते थे; जो और कोई भगवत यश गान करने लगै, तो रीझ के अपने सुवर्ण के आभूषण और वस्त्र तत्काल उतार के देदेते थे।

एक समय "मालपुर" ग्राम में मंगल का करनेहारा रास रचके कराया देखके परम प्रेम रसरंग में पगके घरका सब धन वस्तु प्रभुको भेट करादिया॥

दो० "गिरिधर स्वामीपर कृपा, बहुत भई, वश कुंज। रसिक रसिकनी कौ सुजस, गायौ तिहि रसपुञ्ज॥" (श्रीध्रुवदास)

ग्वाल पदवी आपने श्रीनन्दनन्द जी के सखा होनेसे पाईथी।गिरिधरजी कई हुए हैं। एक बरसाने वाले दो० "बरसाने गिरिधर सुहृद, जाकें ऐसा हेत। भोजन हू भक्तन बिना, धर्‌यौ रहै, नहिं लेत॥" और श्रीवल्लभाचार्य्य जी के पोते, बिट्ठलनाथ के बेटे श्रीगिरिधर जी पृष्ट ८३८ मूल ८० में तथा मूल १३१ में वर्णित हुए।

(८१७) टीका। कवित्त (८४३-८१७=२६)

गिरिधर ग्वाल, साधुसेवा ही कौ ख्याल जाके, देखि यौं निहाल होत, प्रीति सांची पाईहैं। संत तन छूटे हूंते लेत चरणामृत जो, और अब रीति कहौ कापै जात गाई है॥ भये द्विज पंच इकठौरे सो प्रपंच मान्यौ, आन्यौ सभामांझ कहैं "छोड़ौ न सुहाई है। जाकै हो अभाव मत लेवौ, मैं प्रभाव जानौं मृतक यों बुद्धि ताकौ बारो"सुनि भाई है॥६२५॥ (६२९--६२३=६)

"ख्याल" = खयाल् = خیال = सुरति, सुधि, स्मरण।

वार्तिक तिलक।

श्रीगिरिधरग्वाल जी परम भक्त हुये। आपके चित्त में सदा साधु सेवाहीका चिन्तवन बना रहा करता था। सन्तोंका दर्शन करते ही प्रेमानन्द से निहाल होजाते थे। क्योंकि प्रभु की कृपासे सच्ची प्रीति प्राप्त थी, यहां तक कि साधु का प्राण छूट जानेपर भी चरणामृत लेलेते थे,तब सजीव सन्तों में जो आपकी जैसी प्रीति रीति थी वह कौन कह सकता है? इस बातको देख सब ब्राह्मण प्रपंच पंचायत और सभा कर श्रीगिरिधर जी को बुलाकर कहने लगे कि "मृतक वैष्णवों

का चरणामृत लेना छोड़ दो यह भला नहीं है।" उनके बचन सुन आपको नहीं अच्छे लगे; उत्तर दिया कि "जिसके अभाव हो वह मत ले, मैं तो भगवत भक्तों का प्रभाव जानता हूं कि वे कभी मरते नहीं, वे तो प्रभु के ध्यान में समा जाते हैं, आप लोग भी सन्तों में से मृतक बुद्धि उठा लीजिये।"

आप की वार्त्ता सुन अच्छे लोगोंको बहुत अच्छी लगी।

(२६७) देवी श्रीगोपाली जी।

(८१८) मूल। छप्पय (८४३-८१८=२५)

गोपाली जनपोषकों, जगत जसोदा अवतरी॥ प्रगट अंगमें प्रेम नेम सों मोहन सेवा। कलियुग कलुष न लग्यो, दासतें कबहुं न छेवा॥वानी सीतल, सुखद, सहज गोबिंद धुनि लागी। लक्षन कला गँभीर, धीर, संतनि अनुरागी॥ अंतर सुद्ध सदा रहै, रसिकभक्ति निज उर धरी। गोपाली जन पोषकों जगत जसोदा अवतरी॥ १९५॥ (२१४-१९५=१९)

वार्तिक तिलक।

श्री "गोपाली" जी हरिभक्त जनोंके पोषण करने के लिये मानों श्री "यशोदा" जी ने अवतार लिया। तन मन में प्रेम प्रगट दीखता था; श्री मोहनलाल की सेवा पूजा सप्रेम नियम से करती थी, कलियुग कृत पाप आप के तन मन में नहीं छूगया, और आपने भगवत दासों से

अंतर कपट कभी न किया; वाणी शीतल सुख देनेवाली बोलतीं, सहजहीं गोविन्द नाम की धुन लगी रहती थी; शुभ लक्षण, कलाचातुर्य्य, गाम्भीर्य्य, धीरता, अदिक गुणों से सम्पन्न, और सन्तों में अति अनुरागवती थीं। "श्रीगोपाली जी" का अन्तःकरण सदा शुद्ध रहता था, उस शुद्ध हृदय में आपने वात्सल्य रस की भक्ति धारण की। आपके पुत्र बड़े हरिभक्त हुए।

(२६८) श्रीरामदास जी।

(८१९) मूल। छप्पै (८४३–८१९ = २४)

श्री रामदास रसरीति सों, भलीभांति सेवत भगत॥ सीतल, परम सुसील, वचन कोमल मुख निकसै। भक्त उदित रवि देखि हृदै वारिज जिमि विकसै॥ अति आनँद, मन उमगि संत परिचर्या करई। चरण धोय दंडौत विविधि भोजन विस्तरई॥ "वछवन" निवास, विस्वास हरि, जुगल चरण उर जगमगत। श्रीरामदास रस रीति सों भलीभांति सेवत भगत॥ १९६॥ (२१४–१९६ = १८)

वार्तिक तिलक।

श्रीरामदास जी परम प्रीति रसरीति से भलीभांति भगवत भक्तों की सेवा करते थे। अति शीतल, परम सुशील, स्वभाव से आप के मुख से सदा कोमल बचन

निकलते थे; जैसे उदित सूर्य्य को देख कमल बिकसते हैं, इसी प्रकार हरिभक्तों को देख अति प्रफुल्लित होते थे, मनमें अति आनन्द उमगा के, सन्तों की सेवा परिचर्य्या इस प्रकार करते थे कि प्रथम दण्डवत कर चरणों को धो विभव विस्तार से बिबिध भांति के भोजन कराते थे। व्रजके "बरत वन" में निवास कर, श्रीबिहारी जी में विश्वास युक्त जगमगाते श्रीहरि जुगल चरणों को हृदय में धारण किया।

(८२०) टीका। कवित्त (८४३-८२०=२३)

सुनि एक साधु आयौ, भक्तिभाव देखिबेकौं, बैठे रामदास, पूछै "रामदास कौन है?" उठे आप धोए पांव, "आवै रामदास अब," "रामदास कहो? मेरे चाह और गौन है॥" "चलौ जू प्रसाद लीजै, दीजै रामदास आनि," "यही रामदास, पग धारौ निज भौन है"। लपटानौ पाइन सों, चायन समात नाहिं, भायनि सों भऱ्यौ हिये, छाई जस जौन्ह है॥६२६॥(६२९-६२४=५)"जौन्ह"=उजाला।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीरामदास जी की प्रीति, रीति साधु सेवा, की बड़ाई सुन, एक साधु भक्तिभाव देखने के लिये आये; श्री रामदास जी बैठे थे; सो उन्हीं से पूछा कि "रामदास कौन हैं?" आप उठके सन्त को दण्डवत कर, चरण धो, बोले कि "अभी आता है रामदास आप चलिये प्रसाद पाइये," सन्त ने कहा कि "रामदास कहां हैं? उनके दर्शन की मुझे विशेष चाह है, प्रसादादिक की चाह सामान्य है।" तब आपने

हाथ जोड़कर विनय किया कि "चलिये प्रसाद पाइये, तब मैं रामदास को बुला दूंगा।" सन्त ने पुनः कहा कि "नहीं रामदास जी के दर्शन कर, तब पाऊंगा।" तब आप बोले कि "आप अपने गृह में पधारिये, 'रामदास' यही है"। साधु जी सुनतेही चरणों में लपट गये, प्रेमानन्द हृदय में नहीं समाता था, और भाव से भरके कहने लगे कि "धन्य आप हैं, आप के यश रूपी चन्द्रमा की जोंन्ह (जोन्हाई, उजियारी) जगत में छा रही है"।

(८२१) टीका। कवित्त (८४३–८२१=२२)

बेटीको विवाह, घर बड़ो उतसाह भयौ, किए पकवान नाना, कोठे मांझ धरे हैं। करै रखवारी सुत नाती दिये तारो रहैं; और ही लगाये तारो खोल्यौ नहीं डरे हैं॥ आये गृह संत तिन्हे पोट बंधवाय दई, पायों यो अनन्त सुख ऐसे भाव भरे हैं। सेवा श्रीविहारीलाल, गाई पाक सुद्ध ताई, मेरे मन भाई, सब साधु उर हरे हैं॥ ६२७॥ (६२९–६२५=४)

वार्तिक तिलक।

आपके गृहमें बेटीके विवाह का बड़ा उत्साह था, बरात के लिये घरके लोग पकवान मिठाई बनवा, कोठमें रक्खे, ताला दे, पुत्र पौत्रादिक आपसे डरते, रक्षा करते थे। सन्तों की एक 'जमात' आई, आप गृहके लोगोंका भय छोड़, दूसरी कुंजी लगाकर ताला खोल, सन्तों को सब पकवान की गठरियां बंधवादीं; सन्त पाकर अति सुखी हुये; देकर आप भी सुखी हुये। सन्तों के प्रेमभाव से आप ऐसे भरे थे। श्री

बिहारीलाल जी की सेवा सप्रेम करते थे भोग के लिये पाक रसोई अति स्वच्छता से कर, सन्तों को प्रसाद पवाते थे। आपकी सचाई ने सब सन्तों का मन हरलिया और मेरे मनको अति प्रिय लगी इस्से मैंने गान किया है॥

श्रीरामदास बहुत हुए—एक ये, एक श्रीडाकौर के क्षेत्र के रहनेवाले, एक रामदास जी श्रीमीराबाई के पुरोहित, एक चौहान राजपूत, एक खमाच के रहनेवाले इत्यादि॥

(२६९) श्रीरामराय जी।

(८२२) मूल। छप्पै (८४३-८२२=२१)

बिप्र सारसुत घर जनम, रामराय हरि रति करी॥ भक्ति, ज्ञान, वैराग, जोग, अंतरगति पाग्यों। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मतसर, सब त्याग्यों॥ कथा कीरतन मगन सदा आनँद रस झूल्यौ। संत निरखि मन मुदित उदित रबि पंकज फूल्यौ॥ वैर भाव जिन द्रोह किय, तासु पाग खसि भ्वैं परी। बिप्र सारसुत घर जनम, रामराय हरि रति करी॥ १९७॥ (२१४-१९७=१६७)

वार्त्तिक तिलक।

सारस्वत ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर, श्रीरामराय जी ने भगवत से प्रीति की। आपका हृदय भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग, इन साधनों से पग रहा था; और, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मत्सर, आदि दुर्गुणों को आपने त्याग किया था।

श्रीहरि कथा, कीर्तन, में मग्न होकर सदा आनन्द के रस से झूलते थे। जैसे सूर्य्य को उदित देख कमल फूलते हैं इसी प्रकार आप सन्तों को देख प्रमुदित प्रफुल्लित होते थे; आप से जिसने बैर भाव से द्रोह किया उसके सीस की पाग भूमि में गिर पड़ी।

एक समय सज्जनों की सभा में एक धनी दुष्ट आप से द्रोह कर निन्दा करने लगा, उसकी पाग प्रभु प्रेरणा से अनायास भूमि में यों गिरपड़ी कि जैसे किसी ने धौल मारा हो। वह अति लज्जित हो, सभा से चलागया।

एक रामरायजी थे, और एक राठौर खेमालरत्न के पुत्र रामरैन हैं।

मूल १९२ पृष्ठ १२०२। श्रीकन्हरदास जी के महा महोत्सव में, सम्वत १६५२ में, सब सन्तोंने मिलकर "गोस्वामी" की पदवी श्री १०८ नाभाजी को दी॥ श्रीकान्हरदास पर श्रीसोभूराम जी की भी कृपा हुई थी॥

(२७०) श्रीसोभूराम जी (मूल १९०। १९१ पृष्ठ १२९९) ब्राह्मण, श्रीहरिव्यास जी के शिष्य बड़े भक्त हुए। इनका एक मन्दिर अभीतक उड़ीसा जगाधरी के पास वर्त्तमान है। आपके नगर के पास श्रीयमुनाजी बहती थीं। एक बेर बाढ़से क्लेशित हो नगर के लोग आपके पास पहुँचे, आपने आकर श्रीयमुनाजी से विनय किया कि "माता पुत्रों को पालती है, न कि डुबाती है। यदि ऐसी ही रुचि हो तो कुदाल (फावड़े) से मैं इधर बढ़ने के लिये आप को मार्ग बनादूं।" सुनके श्रीयमुनाजी प्रसन्न हो हट गईं। फिर उधर न बढ़ीं।

वहांके नगरअधिपति (हाकिम) ने, शंखध्वनि सुन चाहा कि आप पर कोप करे। उसके मन की जानकर, आप प्रातःकाल उसके पास पहुँचकर बोले कि यदि मुझसे आपको क्लेश होता है तो जहां आपकी इच्छा हो मैं चला जाऊं।" "हाकिम" ने क्षमा मांगी, विनय किया।

(२७१)श्रीभगवन्तजी (श्रीमाधवदास के पुत्र)।

(८२३) मूल। छप्पै (८४३-८२३=२०)

भगवंत मुदित उदार जस रस रसना आस्वाद किय ॥ कुंजबिहारी केलि सदा अभ्यंतर भासै।
दंपति सहज सनेह प्रीति परमिति परकासै ॥
अननि भजन रसरीति पुष्ट मारग करि देखी।
बिधि निषेध बल त्यागि, पागि रति, हृदै बिशेखी॥
माधवसुत संमत रसिक तिलक दाम धरि सेव लिय।
भगवंत मुदित उदार जस रस रसना आस्वाद किय ॥१९८॥ (२१४-१९८=१६)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीभगवंत भक्तजी ने भगवत का सरस उदार यश अपनी जीभ से आस्वादन किया। श्रीकुंजबिहारी जी की केलि आपके हृदय में सदा भासती थी, दंपति श्री राधा कृष्णजी का स्नेह और परम प्रेम प्रकाशित होता था; अनन्य रसरीति भजन के पुष्ट मार्ग को देखके उसीमें प्रवृत थे, और साधारण धर्म अर्थात् विधि निषेध कर्मों के बलको तजके, विशेष प्रीतिसे आप का हृदय पगा था; श्रीमाधवदास जी के पुत्र (भगवंत जी) ने सन्त सम्मत रसिक, कंठी तिलक धारण कर, भगवत भागवत सेवा ग्रहण किया।

(८२४) टीका। कबित्त (८४३-८२४=१९)

सूजा❋ के दिवान भगवंत रसवंत भए, वृन्दावन वासिन

की सेवा ऐसी करी है। बिप्र कै गुसांई साधु कोऊब्रजवासी जाहु, देत बहु धन एक प्रीति माति हरी है॥ सुनी गुरु देव, अधिकारी श्रीगोबिन्द देव, नाम हरि दास "जाय देखैं" चित धरी है। जोग्यताई सीवाँ प्रभु दूध भात मांगि लियौ कियौ उतसाह तऊ पेखैं अरवरी है॥ ६२८ (६२८–६२६ = ३)

वार्तिक तिलक। * نواب شجاع الملک صوبہ دار

श्रीभगवंतभक्त जी आगरे के सूबा* के मुख्य मंत्री, बड़े रसवन्त थे। वृन्दावन बासियों की ऐसी सेवा की कि जो ब्राह्मण, गोशांई, सन्त, कोई 'ब्रजवासी' उनके पास जाता, उसको बड़ी मनोहर प्रीति रीति से बहुत धन देते थे।

एक समय श्रीगोबिन्ददेव जी के अधिकारी "श्रीहरिदास जी" भगवंत जी के गुरुदेव ने आपके यहां जानेका निश्चय किया वे श्रीहरिदास जी योग्यताई के सीमा ऐसे थे कि जिन से श्रीगोबिन्द जी ने दूध भात मांगके भोजन किया। तथा पि आपने श्रीभगवंत जी की भक्ति सुनकर देखने को उत्साह उत्कण्ठा किया। *नवाब शुजाउल्मुल्क सूबादार के दीवान्।

(८२५) टीका। कवित्त (८४३–८२५ = १८)

सुनी, गुरु आवत, अमावत न किहूं अंग, रंग भरि तिया सों, यों कही "कहा कीजियै?" बोली "घर बार पट संपति भंडार सब भेटकरि दीजै, एक धोती धारि लीजियै॥" रीझे सुनि वानी, "सांची भक्ति तैंही जानी, मेरे अति मन मानी" कहि आखैं जल भींजिये। यही बात परी कान, श्रीगुसांई लई जान, आये फिरे वृन्दावन, पन मति धीजिये॥ ६२७॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगुरु भगवान का आगमन सुन, आपके अंग में प्रेमानन्द समाता नहीं था; अपनी धर्म्मपत्नी से पूछा कि "कहो श्रीगुरु जी की भेट पूजा किस प्रकार करनी चाहिये?" वह उदार-अनुरागवती बोली कि "आप और मैं एक एक धोती धारण कर, और घरकी सब सम्पति वस्त्र भूषण द्रव्य सब का सब भेट कर देवैं" ऐसे वचन सुन श्री भगवंत जी अति प्रसन्न होकर कहने लगे कि "सच्ची भक्ति एक तुमहीं ने जानी, तुम्हारा बचन मुझे अति प्रिय लगा," ऐसा कहते नेत्रों प्रेम का जल बहने से लगा।

यह बात कहीं श्रीगुसांई जी के कानों में पड़ी, दोनों का निश्चय जान, मार्ग से लौटके श्री बृन्दावन चले आये; और अपने शिष्य (श्रीभगवन्त जी) के प्रेम पन पर अति प्रसन्न हुये॥

(८२६) टीका। कवित्त (८४३-८२६ = १७)

रह्यौ उतसाह उर दाह को न पारावार, कियौ लै विचार, आज्ञा मांगि, बन आये हैं। रहे, सुख लहे, नाना पद्र रचि कहे, एकरस निर्वहे, ब्रजबासी जा छुटाये हैं॥ कीनी घर चोरी, तऊ नैकु नाता मोरी नांहि, बोरी मति रंग, लाल प्यारी दृग छाये हैं। बड़े बड़ भागी, अनुरागी, रति जागी, जग माधव रसिक वात सुनौ पिता पाये हैं॥६२८॥ (६२९-६२८ = १)

वार्त्तिक तिलक।

श्री भगवंत जी ने भी सुना कि "श्री गुरुस्वामी बृन्दाबन

को लौट गये। " तब दर्शन का वह उत्साह चला गया ! बरंच हृदयमें बड़ाही अनुताप हुआ !! वह ताप शान्त होने का बिचार कर, सूबे से आज्ञा लेकर श्रीवृन्दाबन आ, श्रीगुरु देवका दर्शन पूजन कर सुखी हुये। कुछ दिन रह कर, अनेक पद बनाके प्रभु का यश गान किया; आपकी प्रीति रीति का एक रस निर्वाह हुआ।

फिर गुरू आज्ञा ले, आगरे को गये; वहां कईएक ब्रज वासी चोर कारागार (क़ैदख़ाने) में पड़े थे, उनको छुड़ादिये।

एक बेर और ब्रजवासी चोर भगवंत जी के गृह की सब वस्तु चुरा ले गये। परन्तु आपने दुःख से नाक न सकोड़ी बरंच अति आनन्दित हुये, क्योंकि मति प्रेम रंग से रँगी, और नेत्रों में लाल प्यारी की छबि छारही थी।

बड़े ही बड़भागी अनुरागी थे, रति प्रीति जगतमें जग-मगा रही है। अब भगवंत जी के पिता श्रीमाधव रसिक की अन्तकाल की बात सुनिये॥

(२७२) श्रीमाधवदास जी (श्रीभगवन्त जी के पिता)।

(८२७) टीका। कबित्त (८४३-८२७=१६)

आयौ अंतकाल जानि बेसुधि पिछानि, सब आगरे तें लैके चले वृन्दावन जाइयै। आए आधी दूर, सुधि आई बोले चूर व्हैके "कहां लिये जात कूर?" कही "जोई ध्याइयै"॥ कह्यौ "फेरौ तन बन जायबेको पात्र नहीं, जरै वास आवै प्रियापियको न भाइयै" ॥ जानहारौ होई, सोई जायगौ जुगल पास, ऐसे भावरासि, ताही ठौर चलि आ-इयै॥ ६२९॥ (६२९-६२९=०)